दिसम्बर 2000

मूल्य : सात रुपये

कुरुक्षेत्र

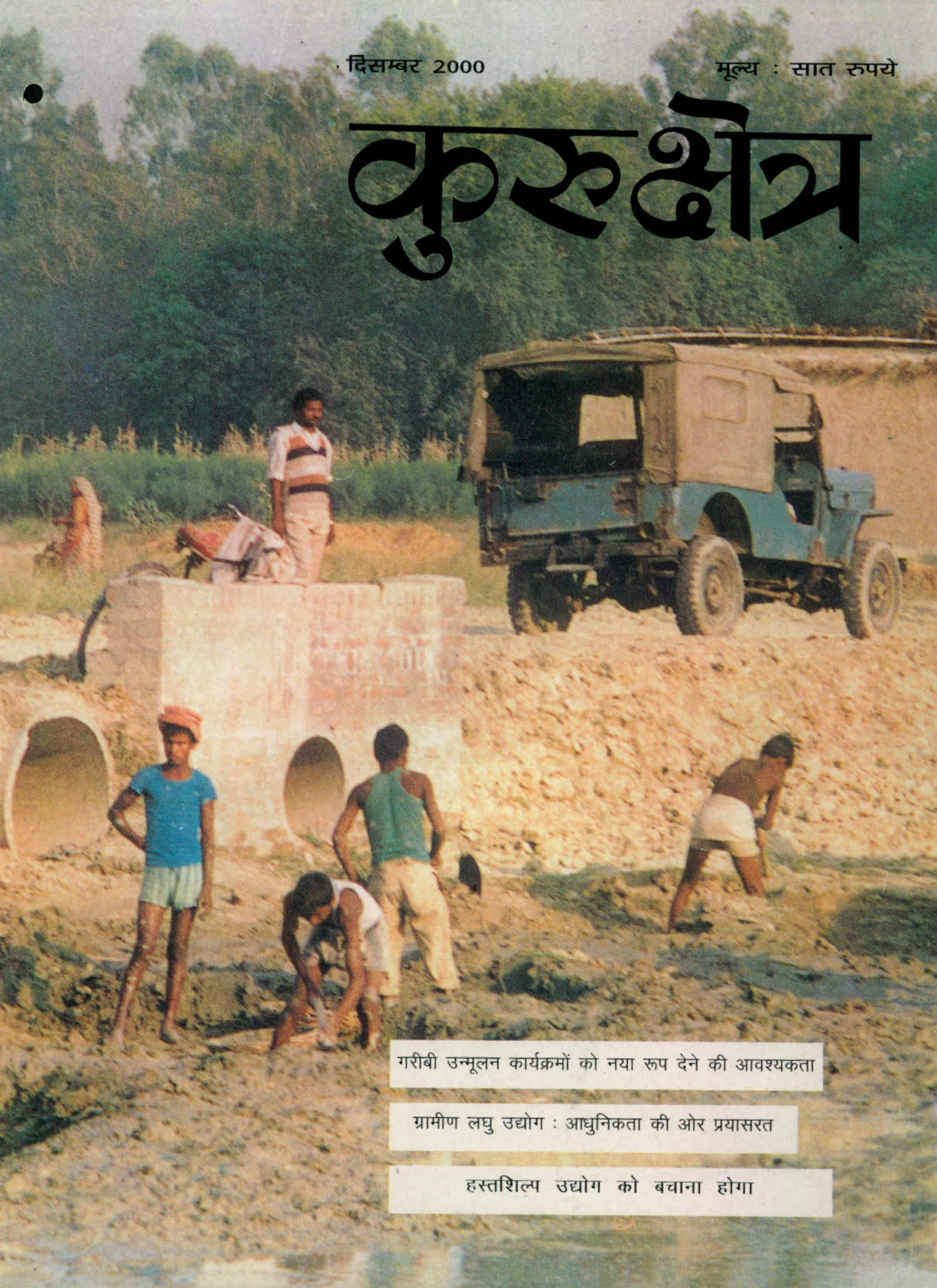

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को नया रूप देने की आवश्यकता

ग्रामीण लघु उद्योग : आधुनिकता की ओर प्रयासरत

हस्तशिल्प उद्योग को बचाना होगा

कहानी अन्ना हजारे के गांव की

भूषण लाल परगनिहा

महाराष्ट्र प्रदेश में एक छोटा–सा गांव है रालेगण सिद्धी।

यह गांव छोटी–छोटी टेकरियों के बीच बसा है। यहां बरसात बहुत कम होती थी। टेकरियां नंगी और पथरीली होने के कारण पानी रुकता नहीं था। खेतों में भी पत्थर के टुकड़े थे अतः जो कुछ भी थोड़ा–बहुत पानी गिरता था वह बहकर नाले में चला जाता था। खेती नाम मात्र की होती थी। पीने का पानी भी पूरा नहीं पड़ता था। पीने का पानी पड़ोस के गांव से मांगना पड़ता था।

रोजी–रोटी के लिए लोग गांव छोड़कर आस–पास के समृद्ध गांवों या शहरों की ओर जाते थे। कुछ लोग अपनी रोजी–रोटी शराब बनाकर और बेचकर कमाते थे। इस छोटे से गांव में शराब बनाने वालों की संख्या 30–35 थी। यहां कुछ पान के ठेले थे जिनमें बीड़ी, सिगरेट तथा तम्बाकू का गुटखा बिकता था। लोग शराब, बीड़ी–सिगरेट तथा गुटखा के आदी हो गए थे।

मैदानों और खेतों की मेढ़ों में झाड़ नहीं होने के कारण उपजाऊ मिट्टी बड़ी तेजी से पानी के बहाव के साथ बहकर चली जाती थी अतः खेतों में अन्न बहुत कम पैदा होता था। पशुओं के चरने के लिए चारा की कमी थी। पशु छुट्टा चरते थे अतः चारा के अलावा फसल और झाड़ियों को भी चर जाते थे।

ऐसे दीन–हीन गांव में अन्ना हजारे नाम के एक समाज सुधारक पैदा हुए। साधारण–सी शिक्षा पाने के बाद ये फौज में भरती हो गए। फौज में इन्हें ड्राइवरी का काम मिला।

सन् 1965 के खेमकरण युद्ध में अन्ना की गाड़ी में जितने लोग सवार होकर लड़ाई के मैदान में गए थे, वे सभी मारे गए। केवल अन्ना बच गए। इस घटना के बाद उन्हें युद्ध से विरक्ति हो गई। वे सेना छोड़कर गांव आ गए। गांव आने के बाद उन्हें ग्राम–विकास की प्रेरणा मिली। इस प्रकार की प्रेरणा को एक शुभ संकेत मानते हुए अन्ना ने इस कार्य का बीड़ा उठा लिया।

वे गांव वालों से इस बाबत चर्चा करने लगे लेकिन गांव वाले इनकी बातें सुनने को तैयार नहीं थे। वे लोग अपनी तकलीफों के कारण हताश थे और काम से लौटने पर मनोरंजन के लिए नशा–पानी में मस्त रहते थे।

अन्ना इस सोच–विचार में पड़ गए कि इन्हें जोड़ा कैसे जाए। सोचते–सोचते एक विचार उनके मन में आया। गांव में एक पुराना मंदिर था जो खंडहर जैसा हो गया था। अन्ना ने कुछ लोगों के सामने इस मंदिर की मरम्मत की बात की लेकिन लोगों ने कोई रुचि नहीं दिखाई। लोगों के पास इस काम के लिए पैसे नहीं थे।

अन्ना ने खूब सोचा और सोचने के बाद वे इस निर्णय पर पहुंचे कि उन्हें अपना काम शुरू करने के लिए अकेले ही कोशिश करनी होगी। इस निर्णय पर पहुंचने के बाद भविष्य निधि से मिले हुए अपने पैसों से मंदिर की मरम्मत का काम शुरू करा दिया। मंदिर जैसे ही थोड़ा ठीक–ठाक हुआ तो अन्ना मंदिर में ही रहने लगे। मंदिर में लोग भजन–पूजन के लिए अधिक संख्या में आने लगे और अन्ना चूंकि वहां हमेशा रहते थे अतः खाली समय में भी कुछ लोग उनके पास आकर बैठने लगे। अन्ना उनसे गांव के विकास के बारे में चर्चा करने लगे।

मंदिर में अन्ना की निजी जरूरत की चीजें बहुत कम थीं। उन्हें किसी प्रकार का व्यसन नहीं था। वे अपना समय पुस्तकें

अन्ना हजारे (दायें) अपने एक सहयोगी के साथ

पढ़कर या गांव में घूमकर लोगों से गांव के विकास के बारे में चर्चा कर के काटते थे।

गांव वालों पर उनके रहन–सहन तथा विचारों का प्रभाव पड़ने लगा। अपने निजी पैसों से मंदिर का उद्धार करा देने का प्रभाव भी गांव वालों पर पड़ा। अतः धीरे–धीरे लोग उनसे जुड़ने लगे।

अपने निजी जीवन तथा विचारधारा से अन्ना ने गांव के लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने में विजय पाई। अब लोग उनके बुलाने पर आने लगे। उन्होंने गांव वालों के सामने गांव की दुर्दशा पर चर्चा की और कहा कि हमें कुछ उपाय करना चाहिए ताकि लोग अपनी रोजी–रोटी गांव में ही कमाने लगें।

सबसे पहले उन्होंने बरसात के पानी को अधिक से अधिक मात्रा में रोकने के उपायों की चर्चा की। सभी ने एकमत से अपनी सहमति दी। लोगों के पास चूंकि पर्याप्त पैसा नहीं था अतः उन्होंने श्रमदान से काम करने का निर्णय लिया और काम भी शुरू कर दिया मगर शराब बेचने और पीने वालों के कारण श्रमदान का काम कमजोर रहा। अन्ना ने गांव वालों के साथ

(शेष आवरण पृष्ठ 3 पर)

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय
की
प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष 46 अंक 2
अग्रहायण–पौष 1922
दिसम्बर 2000

संपादक
बलदेव सिंह मदान

उप संपादक
जयसिंह

संपादकीय पता
संपादक, 'कुरुक्षेत्र',
ग्रामीण विकास मंत्रालय,
कृषि भवन, नई दिल्ली–110001
दूरभाष : 3015014
फैक्स : 011–3015014
तार : ग्राम विकास

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

विज्ञापन प्रबंधक
पी.सी. आहूजा

आवरण सज्जा
अलका नय्यर

फोटो साभार :
मीडिया डिवीजन, ग्रामीण विकास मंत्रालय

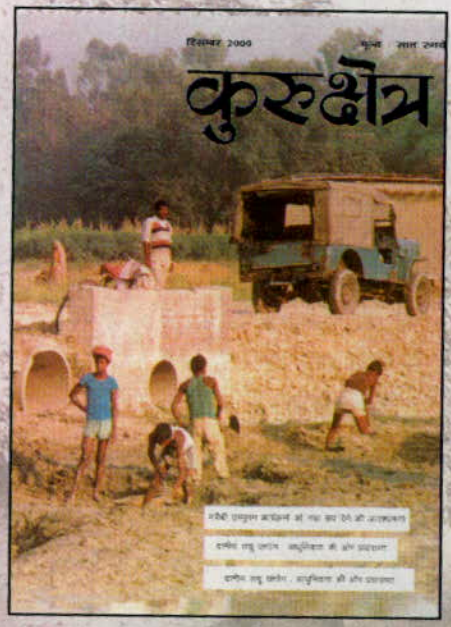

मूल्य एक प्रति : सात रुपये
वार्षिक शुल्क : 70 रुपये
द्विवार्षिक : 135 रुपये
त्रिवार्षिक : 190 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)
पड़ोसी देशों में : 500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में : 700 रुपये (वार्षिक)

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक–4, लेवल–7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक–4, लेवल–7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। फोन : 6105590

हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

इस अंक में

- गरीब भारत की भावी चुनौतियां — अनुपम कुमार सुमन — 3
- गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को नया रूप देने की आवश्यकता — डा. कैलाश चन्द्र पपनै — 5
- पंचायती राज व्यवस्था के विकास में स्वैच्छिक संगठनों से अपेक्षाएं — डा. उमेश चन्द्र अग्रवाल — 8
- पंचायती राज के संवैधानिक प्रावधान : एक विश्लेषण — डा. राज मणि त्रिपाठी — 11
- ग्रामीण विकास में महिलाओं की बढ़ती भूमिका — मधुका ललोराया (श्रीवास्तव) एवं अरविन्द श्रीवास्तव — 14
- भ्रष्टाचार : विकास की राह में एक बड़ी बाधा — डी.आर. कार्तिकेयन — 17
- कृषि क्षेत्र में सुधार की शुरुआत : नई कृषि नीति — डा. जयन्तीलाल भण्डारी — 19
- ग्रामीण लघु उद्योग : आधुनिकता की ओर प्रयासरत — एस.एस. सोलंकी — 21
- साक्षरता से ही विकास की गति में वृद्धि संभव — शैलेश कुमार श्रीवास्तव — 29
- हस्त शिल्प उद्योग को बचाना होगा — राजन मिश्रा — 36
- पूर्वी उत्तर प्रदेश में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग से रोजगार के अवसर — वीरेन्द्र तिवारी — 38
- राजस्थान में जनसंख्या विस्तार : नागरिक सुविधाओं पर मार — डा. मान चंद जैन "खण्डेला" — 40
- मूंगफली : आहार भी औषधि भी — डा. विजय कुमार उपाध्याय — 44

पाठकों के विचार

महिलाओं को शिक्षित करने में पुरुष सहयोग करें

नारी शिक्षा : प्रारूप तथा संभावनाएं (*कुरुक्षेत्र* सितम्बर अंक) डा. अलका श्रीवास्तव का लेख पढ़ा। विगत 52 वर्षों में नारी ने शिक्षित होकर उल्लेखनीय सफलताएं अर्जित की हैं।

आज शिक्षित नारी क्या नहीं कर सकती? वह कठिन से कठिन कार्य जैसे पुलिस और सेना में अधिकारी का दायित्व हो या रेल और विमान उड़ाना। आखिर ऐसा कौन–सा क्षेत्र है, जिसमें महिलाएं अपनी सफलता का झंडा नहीं गाड़ रही हैं। परन्तु यह उल्लेखनीय सफलताएं सिर्फ सुख–सुविधाओं में पली बढ़ी एवं शहरी सभ्यता में विकसित लड़कियों/महिलाओं को ही मिल रही हैं। इसके विपरीत गांवों की स्थिति आज भी महिला शिक्षा में अच्छी नहीं है। लड़कियों को सिर्फ 5वें या 8वें दर्जे तक ही पढ़ाया जाता है। इसके पश्चात उन्हें शादी करके गृहस्थी की चक्की में आजन्म पिसने के लिए डाल दिया जाता है। अतः शिक्षित पुरुषों से मेरा व्यक्तिगत अनुरोध है कि वह अपने घर व आस पास की अशिक्षित महिलाओं को प्रौढ़ शिक्षा, ओपन या पत्राचार पद्धति से शिक्षित करने की पहल करें ताकि सम्पूर्ण शिक्षित समाज एक विकासशील राष्ट्र का निर्माण कर सके।

अर्जुनसिंह 'अंतिम', झा.धा.क्षे.ग्रा. बैंक, शाखा – कुक्षी (धार) म.प्र.–454331

ग्रामीण आवास योजना के क्रियान्वयन में व्यावहारिकता की आवश्यकता

कुरुक्षेत्र का सितम्बर 2000 अंक, पूर्व के अंकों की भांति संग्रहणीय है। इस अंक में *ग्रामीण आवास योजना* पर लेख विशेष रुचिकर लगा। रोटी, कपड़ा और मकान मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएं हैं अतः हर जिम्मेदार सरकार का कर्तव्य है कि वह अपने नागरिकों के लिए इनकी व्यवस्था करे। इस दिशा में *ग्रामीण आवास योजना* स्वागत योग्य कदम है। इस योजना की सबसे अच्छी बात यह है कि यह किसी वर्ग या जाति विशेष से सम्बन्धित न होकर सिर्फ निर्धनों के लिए है।

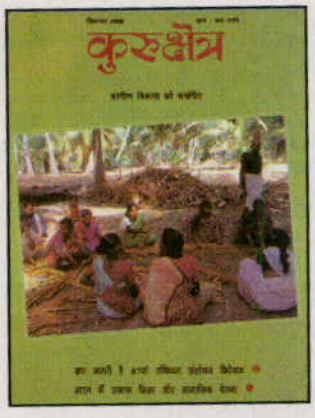

परन्तु खेद का विषय यह है कि यह योजना भी अपनी पूर्ववर्ती आवास योजनाओं के ही ढर्रे पर बनाई गई है। इंदिरा आवास योजना द्वारा निश्चित रूप से लाखों निर्धन परिवारों को आवास उपलब्ध कराए गए हैं परन्तु इस संदर्भ में आंकड़े सही तस्वीर नहीं प्रस्तुत करते। लाखों मकान तो ऐसे हैं जो सिर्फ कागजों पर बने हैं और उन मकानों में से भी जो कि वास्तव में बने हैं बहुतों की गुणवत्ता संदिग्ध है। अतः योजनागत कार्यों का सूक्ष्म निरीक्षण आवश्यक है। इसके अलावा जब तक ऋण देने वाली संस्थाओं में व्याप्त कमीशनखोरी न दूर हो जाए तब तक अनुदान देने का उद्देश्य कैसे पूरा होगा?

ग्रामीण आवास योजना निःसन्देह एक उपयोगी योजना है परन्तु यदि इसके

क्रियान्वयन में व्यावहारिकता का समावेश कर लिया जाए तो योजना निश्चित रूप से अपने लक्ष्यों को प्राप्त करेगी।

केशरी नन्दन मिश्र, अलीनगर, गोरखपुर–273001

सस्ती कीमत वाली बैलगाड़ी विकसित की जाए

मैं विनोबाभावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग के वाणिज्य और व्यापार प्रबंध विभाग में एम.काम. का छात्र हूं। मैंने ग्रामीण विकास को समर्पित *कुरुक्षेत्र* का अगस्त 2000 अंक पढ़ा। इस सस्ती, सुन्दर एवं ज्ञानवर्धक पत्रिका के संपादन के लिए आपको हार्दिक बधाई! इस अंक में डा. राम सूरत त्रिपाठी का आलेख "आज भी उपयोगी हैं बोझा ढोने वाले पशु और बैलगाड़ियां" इतना अच्छा लगा जिसे व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं।

यह सच है कि आवागमन के आधुनिक साधनों के विकास के बावजूद हमारे यहां बोझा ढोने वाले पशुओं और बैलगाड़ियों की उपयोगिता आज भी बरकरार है। आज भी न तो इसका कोई विकल्प है और न ही भविष्य में किसी विकल्प के होने की सम्भावना है। दूसरी ओर कृषि के क्षेत्र में चाहे कितनी ही वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति हो गई हो छोटे किसानों के लिए वैज्ञानिक तकनीकें पूर्ण रूप से व्यावहारिक नहीं हो पा रही हैं।

देश की लगभग 74 प्रतिशत जनता ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में किसानों के लिए कृषि के बाद पशु धन का ही विशेष महत्व है। अतः सरकार

(शेष पृष्ठ 43 पर)

गरीब भारत की भावी चुनौतियां

अनुपम कुमार सुमन

हमारा भारतीय गणतंत्र अर्द्धशतक पूरा कर चुका है। सो हमें इस बात का विश्लेषण करना होगा कि 'नियति के साथ भेंट के दिन' यानी 15 अगस्त 1947 को हमने जो वादे किए थे उन्हें हम कहां तक पूरा कर पाए हैं। दरअसल हमारा संविधान इन्हीं वादों का लिखित दस्तावेज है जिसे "प्रत्येक आंख से आंसू पोंछने" के संकल्प के साथ लागू किया गया था। लेकिन विडम्बना यह है कि आजादी के बाद गरीबों के कष्ट दूर नहीं हो पा रहे हैं। निश्चय ही हमारा संविधान दुनिया में सर्वश्रेष्ठ है परंतु डा. राधाकृष्णन का यह वक्तव्य भी सटीक है कि :– *"जो गरीब लोग बेकार भटक रहे हैं, जिन्हें कोई मजदूरी नहीं मिलती, जो भूख से मर रहे हैं तथा जो निरंतर कचोटने वाली गरीबी के शिकार हैं, वे संविधान या उसकी विधि पर गर्व नहीं कर सकते।"* अतः नई शताब्दी में "गरीब भारत" के समस्त लोगों को रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा तथा स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए जिन सुधारों को कार्यान्वित करना है उन पर क्रमवार दृष्टि डालना उपयुक्त रहेगा।

द्वितीय हरित क्रांति की आस

स्वतंत्रता मिलने के बाद भारत के समक्ष एक बड़ी चुनौती अपनी संपूर्ण आबादी का पेट भरने की थी। दरअसल देश–विभाजन ने भारत की खाद्य–समस्या को और विकराल बना दिया था। आंकड़ों का सहारा लें तो विभाजन के पश्चात भारत को 82 प्रतिशत जनसंख्या मिली जबकि उसे चावल, गेहूं और अन्य अनाजों के उत्पादन का क्रमशः 68 प्रतिशत, 65 प्रतिशत तथा 75 प्रतिशत

क्षेत्रफल ही मिला। स्वाभाविक रूप से भारत ने अपनी जनता को भूख की मार से बचाने के लिए खाद्यान्न–आयात की नीति अपनाई। लेकिन इस नीति ने भारत को एक "परजीवी देश" बनने की ओर अग्रसर कर दिया। अतएव इस दुष्चक्र से मुक्ति पाने हेतु 1960–1970 के मध्य में भारत में कृषि के आधुनिकीकरण को बढ़ावा दिया गया जिससे "हरित–क्रांति" का प्रादुर्भाव हुआ। फलस्वरूप आज भारत में रिकार्ड खाद्यान्न–उत्पादन हो रहा है और इस मामले में देश पूर्णतया आत्मनिर्भर है।

किन्तु इतनी सफलता के बावजूद आज भी भारत की एक–तिहाई से अधिक आबादी भरपेट खाने को तरसती है। इस तथ्य के मद्देनजर नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002) में यह माना गया है कि जीवन की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए खाद्य तथा पौष्टिक आहार सुनिश्चित कराना होगा। इसके लिए एक ऐसी सार्वजनिक वितरण प्रणाली की परिकल्पना की गई है जो सीधे गरीबों को लक्षित हो। लेकिन इस दिशा में सबसे प्रमुख उपाय कृषि उत्पादन को और बढ़ाने से ही संबंधित है। कारण कि भारत की जनसंख्या दिनों–दिन बढ़ रही है और बिना दूसरी हरित क्रांति के भविष्य में खाद्यान्न–उत्पादन के क्षेत्र में पूर्णतया आत्मनिर्भर बने रहना कठिन होगा। अतः प्रथम हरित क्रांति के परिणामस्वरूप जो समस्याएं उत्पन्न हुई हैं, जैसे पूंजीवादी खेती का विकास, आय की असमानता में वृद्धि, श्रम–विस्थापन की समस्या आदि, सबसे पहले इन समस्याओं को ही दूर करना होगा। साथ ही साथ अत्याधुनिक तकनीकों के सहारे वर्तमान कृषि प्रणाली में आमूल–चूल परिवर्तन करने होंगे। तात्पर्य सिंचाई और जल प्रबंध की नई विधि, जैव–उर्वरकों के प्रयोग का विस्तार, शुष्क कृषि को प्रोत्साहन देने आदि से है। वस्तुतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण का संबल पाकर और अपनी मेहनत और लगन की बदौलत

भारतीय किसान "नई हरित क्रांति" के जनक सिद्ध हो सकेंगे।

कुटीर उद्योगों को पुनर्जीवन

आजादी के तुरंत बाद भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया गया और इस तरह वृहत उद्योगों के बढ़ते जंगल में कुटीर उद्योगों के "छोटे पौधे" विलुप्त होने लगे। यद्यपि कई बार लघु तथा कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए करोड़ों रुपये की योजनाएं बनाई गईं लेकिन अभी तक कोई विशेष सुधार नजर नहीं आया है। उल्टे अंतिम दशक में उदारीकरण की प्रक्रिया के शुरू होने से कुटीर उद्योगों का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है। वर्तमान संदर्भ में यक्ष प्रश्न यही है कि क्या बहुराष्ट्रीय कंपनियों के सम्मुख हमारे देश के कमजोर तथा असुरक्षित लघु उद्योग टिक सकेंगे? इस प्रश्न का उत्तर तब तक सकारात्मक नहीं हो सकता जब तक कि सरकार द्वारा छोटे उद्योगों के संरक्षण हेतु विशेष नीति न बना ली जाए। सच तो यह है कि इन्हीं छोटे उद्योगों के बल पर बढ़ती बेरोजगारी की समस्या पर भी अंकुश लगाया जा सकेगा। अतएव हमारे नीति–निर्माताओं को ग्रामीण तथा कस्बाई स्तर पर लघु और कुटीर उद्योगों को संरक्षण देने की सोच विकसित करनी होगी तभी नई शताब्दी में भारत "आर्थिक उपनिवेशवाद" का जम कर मुकाबला कर सकेगा।

इक बंगला बने न्यारा

बीसवीं शताब्दी के मध्य में प्रत्येक आजाद भारतवासी सोने का बंगला न सही लेकिन कम–से–कम छोटे से मिट्टी के मकान का सपना तो अवश्य ही देख रहा था। किन्तु अफसोस कि अनेक लंबी–चौड़ी परियोजनाओं के बावजूद आज भी मुंबई, कलकत्ता जैसे महानगरों में आलीशान इमारतों के साथ–साथ झुग्गी–झोपड़ियों का विशाल समुद्र देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त गांवों में भी 'इंदिरा आवास योजना' जैसी योजनाओं को अपने लक्ष्य को पाने में वांछित सफलता नहीं मिली है। दरअसल समुचित दूरदर्शी आवास–नीति के अभाव और वर्तमान योजनाओं में व्याप्त

पढ़ने लिखने की व्यवस्था के अभाव में आवारागर्दी करते हुए बच्चे

भ्रष्टाचार का ही फल है कि करोड़ों देशवासियों के लिए आसमान ही छत है। हालांकि एक बार फिर नौवीं पंचवर्षीय योजना में सभी बेघर परिवारों के लिए सार्वजनिक गृह–निर्माण का वायदा किया गया है। आशा की जानी चाहिए कि नई सदी में इस वायदे को व्यावहारिक रूप प्रदान किया जाएगा।

साक्षरता की नई मुहिम

1986 की 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' में कहा गया था कि 21वीं सदी प्रारंभ होने से पहले 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों को उचित शिक्षा देने का प्रबंध कर दिया जाएगा। किन्तु यह वायदा भी सहज एक घोषणा बन कर रह गया। दूसरी ओर, कागजी तौर पर भी भारत की आधी जनसंख्या ही साक्षर है। वास्तव में साक्षरता का यह कम प्रतिशत गरीबी की समस्या से ही जुड़ा है। गांवों में और शहरों में भी गरीब परिवारों में बच्चों को पढ़ाने की बजाय उनसे कुछ–न–कुछ उपार्जन कराने की सोच विद्यमान है। अतः शिक्षा के व्यापक प्रसार के लिए सरकारी नीतियों के पूरक के रूप में सामाजिक आंदोलनों की भी आवश्यकता है। यद्यपि 'राष्ट्रीय साक्षरता मिशन' जैसी संस्थाओं ने इस दिशा में काफी परिश्रम किया है तथापि नई शताब्दी में एक और अपेक्षाकृत वृहत साक्षरता परियोजना की जरूरत होगी।

बीमारों के लिए दवा

हालांकि भारत में अब प्लेग, हैजा आदि बीमारियों से गांव के गांव तबाह नहीं होते लेकिन इसका अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता कि भारत पूर्णतः 'स्वस्थ' देश है। यहां अभी भी गरीबों के लिए चिकित्सिकीय सुविधा की न्यूनतम मात्रा ही उपलब्ध है और वह भी सरकारी अस्पतालों में। कई गांवों में अभी भी प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र तक नहीं हैं। ऐसे में 'स्वस्थ और खुशहाल भारत' का नारा खोखला प्रतीत होता है। किन्तु हाल के वर्षों में 'पल्स पोलियो अभियान' जैसी परियोजनाओं की सफलता ने इस तथ्य को उजागर किया है कि यदि कोई चिकित्सकीय परियोजना राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक प्रचार के साथ कार्यान्वित की जाए तो इसकी सफलता के आसार बढ़ जाते हैं। वस्तुतः इसी 'पैटर्न' को सभी प्रमुख बीमारियों के संदर्भ में अपनाने से ही संपूर्ण भारत को रोगमुक्त किया जा सकेगा। साथ ही, सामाजिक संस्थाओं की यह जिम्मेदारी है कि वे लोगों को सफाई की महत्ता समझाएं और परिवेश को स्वच्छ रखने हेतु प्रेरित करें।

अंत में, यही कहा जाना चाहिए कि नई शताब्दी में विभिन्न योजनाओं को अधिकाधिक गरीबोन्मुख बनाया जाएगा तभी भारत 'आर्थिक और सामाजिक न्याय' का विकास करके भविष्य की चुनौतियों से जूझ सकेगा। ❑

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को नया रूप देने की आवश्यकता

डा. कैलाश चन्द्र पपनै

ग्रामीण क्षेत्रों से गरीबी दूर करने के प्रयासों में ग्रामीण विकास मंत्रालय के गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का विशेष स्थान रहा है। वैसे, तो देश के योजनाबद्ध विकास के अभियान में गांवों की तरफ ध्यान देने की और गरीबी उन्मूलन की बात कही जाती रही है परन्तु यह चुनौती अभी भी बनी हुई है। धन की कमी, योजना कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में खामियां और स्वयं ग्रामीणों के बीच अशिक्षा, चेतना और जागरूकता का अभाव जैसे अनेक कारणों से गांवों से गरीबी का अभिशाप पूरी तरह से दूर नहीं किया जा सका है। फिर भी गांवों में गरीबी को 1973–74 के 55 प्रतिशत के स्तर से 1993–94 में 36 प्रतिशत के स्तर पर ले आना योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया की एक सफलता माना जा सकता है। यह माना जाता है कि 1990 के दशक में गरीबी काफी घटी है परन्तु ताजा आकलनों के अनुसार नौवीं योजना के पहले दो वर्षों में ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों की संख्या में उतनी कमी नहीं लाई जा सकी जितनी कि अपेक्षित थी।

योजना आयोग ने नौवीं पंचवर्षीय योजना की मध्यावधि समीक्षा में ग्रामीण विकास मंत्रालय के गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की प्रभावोत्पादकता के बारे में विचार किया और मत व्यक्त किया है कि नई परिस्थितियों में इन कार्यक्रमों में सुधार की आवश्यकता है। समीक्षा के अनुसार यह संभव है कि ग्रामीण गरीबी में कमी लाने वाली शक्तियां कमजोर पड़ रही हों। इस बीच एक बात यह हुई है कि 1990 के बाद के वर्षों में कृषि विकास दर में भी कमी आई है और यह देश के अलग–अलग इलाकों में भिन्न–भिन्न रही है। अतः कृषि विकास में बाधा उत्पन्न करने वाले तत्वों की पहचान करना भी जरूरी है। इसके अलावा ग्रामीण क्षेत्र में गैर–कृषि क्षेत्र के विकास

की नीतियों को भी समायोजित करने की आवश्यकता है।

इस बात में कोई संदेह नहीं होना चाहिए कि उच्च विकास दर के बिना गरीबी दूर करना संभव नहीं है परन्तु उच्च विकास दर को ही गरीबी उन्मूलन के लिए पर्याप्त नहीं माना जा सकता है। विकास के साथ–साथ ऐसी परिस्थितियों का होना भी जरूरी है जिनमें विकास के लाभ समाज के कमजोर और उपेक्षित वर्गों तक भी पहुंच सकें। यह पाया गया है कि गांवों के विकास की ऐसी रणनीति तो सफल रहती है जिसमें गांवों के बुनियादी आर्थिक व सामाजिक ढांचे के विकास पर ध्यान दिया जाता है परन्तु औद्योगिक विकास की अवधारणा पर आधारित नगरोन्मुख विकास की रणनीति प्रायः विफल ही रहती है। यह भी एक त्रासदी ही है कि गरीबी उन्मूलन के तमाम कार्यक्रमों के बावजूद जनसंख्या विस्तार के चलते पिछले 20 वर्षों में गांवों में गरीबी में जो कमी आई है उससे संतुष्ट हो कर बैठने की गुंजाइश तो बिल्कुल भी नहीं है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण विभाग के ताजा आंकड़ों से तो यह संकेत भी उभरता है कि 1998–99 में न केवल गरीबी बढ़ी है वरन् गरीबों की कुल संख्या भी बढ़ी है।

आयोग की समीक्षा में इसके जो संभावित कारण बताए गए हैं वे हैं :

- राज्यों का राजकोषीय संकट जिसके कारण सामाजिक क्षेत्र के विकास पर बहुत कम धन खर्च किया जा रहा है।
- कृषि विकास दर में और विशेष रूप से अनाज उत्पादन में कमी।
- कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में कमी तथा वास्तविक मजदूरी में भी कमी।
- लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली की विफलता, विशेष रूप से उत्तर भारत के गरीबों को इसका लाभ न मिल पाना।
- गैर–कृषि क्षेत्र में नाम मात्र का विकास और
- गरीबी उन्मूलन और जल संभर विकास कार्यक्रमों का निष्प्रभावी बने रहना।

समीक्षा में ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमों की विस्तार से समीक्षा की गई है तथा उनमें सुधार के बारे में सुझाव भी दिए गए हैं। समीक्षा में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के बारे में कहा गया है कि 1980–81 में देश के विभिन्न ब्लाकों में इसे प्रारम्भ किए जाने के बाद 1998–99 तक 5.35 करोड़ परिवार इसकी परिधि में आ चुके हैं और इस कार्यक्रम पर 13,700 करोड़ रुपये खर्च किए जा चुके हैं। नौवीं योजना के पहले दो वर्षों में 1997–98 और 1998–99 में लगभग

समीक्षा में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के बारे में कहा गया है कि 1980–81 में देश के विभिन्न ब्लाकों में इसे प्रारम्भ किए जाने के बाद 1998–99 तक 5.35 करोड़ परिवार इसकी परिधि में आ चुके हैं और इस कार्यक्रम पर 13,700 करोड़ रुपये खर्च किए जा चुके हैं।

33.7 लाख लोग इस कार्यक्रम की परिधि में आए हैं जिनमें से 46 प्रतिशत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के हैं तथा 35 प्रतिशत महिलाएं हैं। इस अवधि में इस पर 6,431 करोड़ रुपये खर्च किए गए जिसमें से 2,266 करोड़ रुपये सब्सिडी के रूप में थे। वास्तव में हुआ यह है कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत मिलने वाली सब्सिडी ही मुख्य आकर्षण बन कर रह गई। होना तो यह चाहिए था कि किसी उत्पादक गतिविधि को चलाने के लिए ऋण की जरूरत होने पर धन सुलभ हो परन्तु समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम में धन सुलभ होने और साथ में सब्सिडी भी उपलब्ध होने के कारण ही लोग किसी उत्पादक गतिविधि के बारे में सोचे बिना सिर्फ सब्सिडी की लालच में किसी भी बहाने से ऋण लेने लगे। इस प्रयास में हर तरह से भ्रष्टाचार और अपव्यय का सिलसिला शुरू हो गया। इस कार्यक्रम से गरीबों को कोई वास्तविक लाभ नहीं मिल पाया। समीक्षा में कहा गया है कि कार्यक्रम का लाभ उठाने वाले पांच लोगों में से मुश्किल से एक व्यक्ति गरीबी की रेखा को पार कर सका। जिन गरीबों ने किसी प्रकार से ऋण हासिल भी किया तो पूरी रकम उनके हाथ में नहीं आ सकी क्योंकि उन्हें कर्ज दिलाने वाले बिचौलियों ने भी अपना हिस्सा मांगा। ऋण पाने वालों ने भी प्रायः इसका उपयोग उस उत्पादक गतिविधि के लिए नहीं किया जिसके नाम पर ऋण लिया गया था। उसकी पहली प्राथमिकता अपनी उपभोग आवश्यकताओं को पूरा करना था। कई स्थानों पर बैंकों की लापरवाही के कारण नियम विरुद्ध ही 10 प्रतिशत राशि बैंक के खर्चों के रूप में काट ली गई। इस प्रकार के तमाम कारणों से अंततः वही व्यक्ति ही दंडित हुआ जिसके कल्याण के नाम पर यह कार्यक्रम चलाया जा रहा था। सबसे बड़ी कठिनाई यह पैदा हुई कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का लाभ उठाने के इच्छुक व्यक्ति गरीबी रेखा से ऊपर उठने में सफल होने के बजाय और भी कर्ज के जाल में फंस गए। कई बार तो उन्हें समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत लिए गए ऋण की अदायगी न हो पाने पर कानूनी कार्रवाई से बचने के लिए और भी ऊंची दर पर कर्ज लेना पड़ा।

नौवीं पंचवर्षीय योजना की मध्यावधि समीक्षा में यह मत व्यक्त किया गया है कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की बुनियादी अवधारणाओं में ही खामियां हैं। इसमें सब्सिडी की जो विशाल राशि व्यय की गई वह प्रायः गलत हाथों में गई और उसका अपव्यय हुआ। यदि इस विशाल राशि को गांवों में बुनियादी ढांचे के विकास या सामाजिक सुरक्षा की मद पर खर्च किया गया होता तो शायद उसके ज्यादा अच्छे परिणाम निकल सकते थे। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम में निहित यह सोच भी गलत ही थी कि एक बार कर्ज दे देने से कोई व्यक्ति गरीबी रेखा से ऊपर उठ जाएगा। वास्तव में किसी उत्पादक गतिविधि की सफलता के लिए अपेक्षाकृत लम्बे समय तक ऋण समर्थन की जरूरत होती है। इसके अलावा किसी भी उत्पादक गतिविधि की सफलता के लिए पर्याप्त मात्रा में प्रारम्भिक निवेश होना भी जरूरी होता है। समीक्षा में कहा गया है कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत जो राशि दी गई वह प्रति परिवार 2,000 रुपये प्रति माह की आय के सृजन के लिए पूरी तरह से अपर्याप्त थी। आठवीं योजना के प्रारम्भ में

यह निवेश राशि 7,889 रुपये थी जबकि नौवीं योजना के प्रारंभ में यह राशि 16,753 रुपये थी। दोनों ही मौकों पर यह अपर्याप्त थी। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की एक बड़ी कमी यह भी रही कि चुनी गई उत्पादक गतिविधियों की निगरानी और समन्वय का काम बहुत कमजोर रहा। उदाहरण के लिए इस कार्यक्रम के अन्तर्गत दुधारू पशुओं को खरीदने के लिए बहुत कर्जा बांटा गया परन्तु वास्तव में हुआ यह कि कुछ इने गिने पशु ही इलाके में घुमाए जाते रहे और इस मद पर कर्ज लेने वाला हर व्यक्ति उन्हीं में से किसी को दिखा कर अपनी परिसम्पति जांच अधिकारियों को दिखाने की औपचारिकता पूरी कर लेता था। छठी योजना की अवधि में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत 50 लाख दुधारू पशु बांटे गए परन्तु देश में पशुओं की गणना में इनका असर कहीं भी नजर नहीं आया।

समीक्षा में इस कार्यक्रम की खामियों को उजागर करने के साथ ही इससे जुड़े हुए कार्यक्रम–स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवकों का प्रशिक्षण (ट्राइसेम) के बारे में यह अभिमत प्रकट किया गया है कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लाभार्थियों में से सिर्फ चार प्रतिशत को ही इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षण मिल पाया। इन युवकों का ध्येय भी प्रशिक्षण के दौरान मिलने वाले वजीफे तक सीमित रहा। उन्होंने प्राप्त प्रशिक्षण का लाभ व्यवसाय के लिए नहीं उठाया। वास्तव में इस प्रशिक्षण योजना और समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के बीच किसी सार्थक तालमेल की बात पर पहले कोई ठोस विचार किया ही नहीं गया। हां यह अवश्य हुआ है कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के ही एक उप–कार्यक्रम के रूप में प्रारंभ किए गए ग्रामीण दस्तकारों को बेहतर औजारों की आपूर्ति के कार्यक्रम को अच्छी सफलता मिली। इससे ग्रामीण दस्तकारों की कार्यक्षमता में अच्छा सुधार हुआ।

ग्रामीण विकास के दो अन्य प्रमुख कार्यक्रमों – सुनिश्चित रोजगार योजना और जवाहर रोजगार योजना की समीक्षा में यह मत प्रकट किया गया है कि इनके अमल में पाई गई कमियों के बावजूद ये आपात बेरोजगारी की समस्या हल करने में कामयाब रही हैं। सूखे, बाढ़ और भूकम्प जैसी आपदाओं के दौर में जरूरतमंदों को रोजगार और आय का साधन प्रदान करने में ये कार्यक्रम उपयोगी रहे हैं। इस बारे में किसी को भी संदेह नहीं है कि आपात परिस्थितियों में इस तरह के कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए परन्तु उतना ही जरूरी यह सुनिश्चित करना भी है कि इनका लाभ उन लोगों तक अवश्य पहुंचे जिनके लिए यह प्रारम्भ किया गया हो। इसके लिए अमल का प्रभावी व भ्रष्टाचार मुक्त तंत्र होना आवश्यक है।

सुनिश्चित रोजगार योजना और जवाहर रोजगार योजना की समीक्षा में यह मत प्रकट किया गया है कि इनके अमल में पाई गई कमियों के बावजूद ये आपात बेरोजगारी की समस्या हल करने में कामयाब रही हैं। सूखे, बाढ़ और भूकम्प जैसी आपदाओं के दौर में जरूरतमंदों को रोजगार और आय का साधन प्रदान करने में ये कार्यक्रम उपयोगी रहे हैं।

सुनिश्चित रोजगार योजना में इस प्रकार की समस्याएं सामने आई हैं कि रोजगार जरूरतमंदों को मिलने के बजाय गांव के सम्पन्न लोगों को या उनके द्वारा बताये गए लोगों को ही मिला। इस योजना में कई बार तो मजदूरी व सामान पर खर्च का 60 और 40 का अनुपात भी बना कर नहीं रखा गया। गांव में परिसम्पति के सृजन के लिए सामान पर अधिक और मजदूरी पर न्यूनतम खर्च करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला। यह भी देखा गया है कि गांव पंचायतों ने बेकारी वाले सीजन में काम की जरूरत वाले लोगों की कोई सूची बना कर भी नहीं रखी। जिन गांवों में इस योजना के प्रभाव के बारे में नमूना सर्वेक्षण किया गया तो वहां पाया गया कि रोजगार के इच्छुक लोगों में से सिर्फ 25 प्रतिशत को ही इस प्रकार का अंशकालिक रोजगार मिल पाया इन जरूरतमंदों को पूरे वर्ष में औसतन 31 दिन का ही रोजगार मिल पाया जबकि उन्हें सौ दिन तक का रोजगार प्रदान करने की बात सोची गई थी। इस योजना की मदद से जिन परिसम्पत्तियों का सृजन हुआ उनका भी कोई रिकार्ड न रखे जाने से यह पता लगाना मुश्किल था कि ये सार्वजनिक परिसम्पत्तियां थीं या फिर निजी परिसम्पतियां थीं। गलत सूचनाएं देने और अन्य प्रकार की तमाम कमियां प्रकाश में आने के कारण अंततः 1999–2000 में इस योजना को नया स्वरूप दिया गया।

समीक्षा में राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत शुरू की गई राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना, राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना, राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना की सराहना करने के अलावा कुछ राज्य सरकारों द्वारा की गई अच्छी पहल का भी उल्लेख किया गया है।

समीक्षा में इस बात को भी महत्व दिया गया है कि गरीबी उन्मूलन के प्रमुख चुनौती बने रहने के बावजूद कुछ राज्यों ने अलग–अलग रास्तों से इस काम में सफलता हासिल की है। यदि पंजाब और हरियाणा जैसे राज्यों ने हरित क्रांति व कृषि विकास का रास्ता चुना तो केरल ने मानव संसाधनों के विकास का रास्ता अपना कर सफलता हासिल की है। इसी तरह से पश्चिम बंगाल ने भूमि सुधार लागू कर के गरीबों की मदद की तो आंध्र प्रदेश ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ़ बना कर उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। ये सारे ही प्रयास उन राज्यों के सामने विकल्प पेश कर रहे हैं जो गरीबी उन्मूलन के काम को गंभीरता से करना चाहते हैं। ❑

कुरुक्षेत्र मंगाने का पता

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक,
प्रकाशन विभाग
ईस्ट ब्लाक–4 लेवल–7
आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110066

मूल्य एक प्रति	:	सात रुपये
वार्षिक शुल्क	:	70 रुपये
द्विवार्षिक	:	135 रुपये
त्रिवार्षिक	:	190 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)		
पड़ोसी देशों में	:	500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	700 रुपये (वार्षिक)

पंचायती राज व्यवस्था के विकास

हमारे देश में स्वैच्छिक संगठनों का निर्बलों और असहायों की सहायता करने तथा विकास सम्बन्धी कार्यों के उत्तरदायित्वपूर्ण निर्वहन का स्वर्णिम इतिहास रहा है। वर्तमान में ग्रामीण लोगों की इन संगठनों के प्रति बढ़ती रुचि और विश्वसनीयता के कारण इन संस्थाओं की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। इन्हें चाहे स्वैच्छिक संगठन कहा जाए अथवा गैर सरकारी संगठन या स्वयंसेवी संगठन, यह निर्विवाद सत्य है कि विकास के कई क्षेत्रों में इन संस्थाओं ने अति विशिष्ट भूमिका निभाई है। बात चाहे शिक्षा, स्वास्थ्य, जनसंख्या नियन्त्रण, पर्यावरण संरक्षण, आय और रोजगार सृजन की हो या फिर महिला, बाल या विकलांगों के कल्याण की अथवा आदिवासी और पिछड़े वर्गों के विकास और कल्याण की, इन संस्थाओं ने समाज और देश की सेवा हेतु सक्रिय सहयोग दिया है। इसी कारण अब प्रशासन और सरकारी तन्त्र भी इस तथ्य को सार्वजनिक रूप से स्वीकार करता है कि विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सरकारी तन्त्र की अपेक्षा गैर सरकारी संगठन अधिक सफल और प्रभावी हैं। इन संस्थाओं के माध्यम से जन–सहभागिता और जन–सहयोग को जुटाकर अपेक्षाकृत कम खर्चे में ही सभी कार्य सफलतापूर्वक पूर्ण कर लिए जाते हैं। यही कारण है कि विगत कुछ वर्षों से, विशेषकर सातवीं पंचवर्षीय योजनाकाल (1985–90) से, सरकार द्वारा गैर सरकारी अथवा स्वयंसेवी क्षेत्र की महत्ता को स्वीकार कर उसे अधिक सम्मान, प्रतिष्ठा और जिम्मेदारी के अधिक अवसर प्रदान करने हेतु पर्याप्त प्रावधान किए गए हैं।

* संयुक्त निदेशक (प्रशिक्षण), राज्य नियोजन संस्थान, उ.प्र., कालाकांकर भवन, पुराना हैदराबाद, लखनऊ–226007.

सरकार द्वारा सहायता

स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद विभिन्न मुद्दों को लेकर देश में स्वयंसेवी संगठनों की एक बाढ़–सी आ गई। इस समय न तो सरकार के पास और अन्य ही किसी संस्थान के पास ऐसे संगठनों की वास्तविक संख्या उपलब्ध है। इस क्षेत्र में सक्रिय विशेषज्ञों का अनुमान है कि इस समय देश में करीब छह लाख स्वयंसेवी संगठन हैं। यद्यपि इनमें से सक्रिय संगठनों के बारे में जानकारी बहुत कम है। अधिकांशतया उन संगठन के बारे में जानकारी है जिनको या तो भारत सरकार के किसी मंत्रालय से अथवा राज्य सरकार के किसी विभाग से अनुदान मिलता है या किसी क्षेत्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के माध्यम से विदेशी सहायता के रूप में वित्तीय संसाधन मुहैया होते हैं। आधिकारिक तौर पर वर्तमान में पूरे देश में करीब 16 हजार ऐसे गैर–सरकारी संगठन है जिन्हें विदेशों से धन प्राप्त होता है। ऐसी संस्थाएं सर्वाधिक तमिलनाडु में हैं और इसके बाद क्रमशः दिल्ली, महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, आन्ध्र प्रदेश और पश्चिम बंगाल का नम्बर आता है। भारत सरकार ने सातवीं योजना–काल से गैर सरकारी संगठनों को अच्छी–खासी सहायता राशि देकर इनको पल्लवित करने का प्रयास किया है और विशेष रूप से ग्रामीण विकास को गति प्रदान करने के लिए इनका सहयोग प्राप्त करने की कोशिशें की जा रही हैं।

वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती हुई साक्षरता, स्वास्थ्य सुविधाएं, आर्थिक गतिविधियां, लघु और कुटीर उद्योग तथा विकास योजनाओं के फैलते प्रभाव ने उनमें जो जागृति पैदा की है उसके सुखद परिणाम नई सदी में ही उन्हें प्राप्त हो सकेंगे इस सम्भावना से इन्कार करने का कोई कारण दिखाई नहीं दे रहा है।

स्वैच्छिक संगठनों के सम्बन्ध में यह यथार्थ है कि वर्तमान में गैर सरकारी संगठनों और पहले से चलाए जा रहे संगठनों में बुनियादी तौर पर बहुत बड़ा फर्क है। एक समय था जब गैर सरकारी या स्वयंसेवी संगठन कुछ सम्पन्न लोगों द्वारा दिए गए चन्दे या सहायता के सहारे चला करते थे और इनके चलाने वाले लोग संत, महात्मा, या निःस्वार्थ भाव से समर्पित व्यक्ति होते थे लेकिन अब इन संगठनों

में स्वैच्छिक संगठनों से अपेक्षाएं

डा. उमेश चन्द्र अग्रवाल*

को चलाने वाले कई जाने–माने सम्पन्न लोगों से भी ज्यादा की हैसियत के व्यक्ति हैं।

प्रमुख चुनौतियां

वर्तमान में गैर सरकारी क्षेत्र के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती आर्थिक संसाधनों की व्यवस्था करना है जो अति दुष्कर कार्य होता जा रहा है। इस समय देश में कार्यरत अधिकांश संस्थाएं प्रकल्प आधारित संसाधनों पर निर्भर करती हैं लेकिन उन्हें कठिन स्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। अब, परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढालने के लिए कुछ संस्थाओं ने आर्थिक गतिविधियां भी प्रारंभ कर दी हैं जिससे दूसरों पर निर्भरता कम की जा सके। *सुलभ शौचालय, राम कृष्ण मिशन, महिला विकास संघ, सेवा* आदि कुछ संस्थाएं इनके अच्छे उदाहरण हैं। ऐसे प्रयासों को अपनाने वाले संगठन अधिक समय तक तथा अधिक से अधिक लोगों तक पहुंच कर अपने मिशन में कामयाबी प्राप्त कर रहे हैं। अपनी उपलब्धियों के लिए अधिकांश संगठन काफी हद तक संचार माध्यमों और प्रचार पर निर्भर रहने लगे हैं।

वर्तमान में गैर सरकारी संगठनों तथा स्वयंसेवी संस्थाओं के समक्ष दूसरी प्रमुख चुनौती स्थानीय सरकारी अधिकारियों द्वारा असहयोग और उन्हें अपना प्रतियोगी समझा जाना है। कुछ अधिकारी तथाकथित स्थानीय समाज के ठेकेदारों के साथ मिलकर कई बार अच्छे, ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ स्वयंसेवी कार्यकर्ताओं को हतोत्साहित करने का घृणित कार्य भी करते हैं और असहयोगपूर्ण रवैया अपनाते हैं जिससे संगठन अपने कार्यों को ससमय करने में असमर्थ पाता है। इससे समाज में उसकी छवि भी धूमिल होती है। इस समस्या के समाधान हेतु ऐसे संगठनों को एकजुट होकर ऐसे अधिकारियों के साथ कड़ाई से निपटना होगा और प्रयास करना होगा कि सरकारी और गैर सरकारी संगठन एकजुट होकर आपसी सहयोग, विश्वास और मित्रतापूर्ण रवैया अपना कर एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य कर सकें। लेकिन इसके लिए गैर सरकारी संगठनों को स्वयं में भी सुधार लाना पड़ेगा।

कार्यकलाप

इन संगठनों के कार्यकलापों को देखें तो विदित होता है कि आज सामाजिक–आर्थिक जीवन से जुड़ी कोई ऐसी समस्या नहीं है जिसमें गैर सरकारी संगठन काम नहीं कर रहे हों, विशेषकर ग्रामीण विकास, पर्यावरण संरक्षण, जनसंख्या नियंत्रण एवं जनचेतना जागरण कुछ ऐसे विशिष्ट क्षेत्र हैं जहां इनकी उपलब्धियां सरकारी क्षेत्र से कहीं अधिक हैं। चूकि ये संगठन जन–सहयोग, जन–सहभागिता, जन–संम्पर्क पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए लोगों के बीच रहकर कार्य करते हैं इसलिए इनकी पहुंच और विश्वसनीयता आम लोगों में सरकारी अधिकारियों तथा कर्मचारियों की अपेक्षा अधिक है। एक दूसरी विशेषता इनकी कार्यविधि में लचीलापन और तीव्र निर्णय की प्रक्रिया है।

ये संगठन जन–सहयोग, जन–सहभागिता, जन–संम्पर्क पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए लोगों के बीच रहकर कार्य करते हैं इसलिए इनकी पहुंच और विश्वसनीयता आम लोगों में सरकारी अधिकारियों तथा कर्मचारियों की अपेक्षा अधिक है।

अधिक स्वतंत्र होने के कारण ये संगठन नए कार्यक्रमों के प्रयोग एवं परीक्षणों के लिए अधिक योग्य और सक्षम हैं। अतः निःसंदेह ही इन संगठनों को अधिक से अधिक दायित्व और अवसर उपलब्ध कराकर विशेष रूप से ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित किया जा सकता है।

सारे देश में फैले 5,80,781 गांवों और इनमें रहने वाले करीब 74 करोड़ ग्रामवासियों को उनकी आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और अपेक्षाओं के अनुरूप व्यवस्थाओं और सुविधाओं से परिपूर्ण करना एक चुनौतीपूर्ण और दुष्कर कार्य है। फिर भी सरकार द्वारा इस दिशा में किए जा रहे विशेष प्रयासों, गैर सरकारी और स्वैच्छिक संगठनों के अभिनव प्रयोगों, त्रिस्तरीय

पंचायतों के माध्यम से गांवों के विकास में जन सहभागिता और सामूहिकता के बढ़ते कदमों, ग्रामीण क्षेत्रों तक मीडिया की पहुंच और दूर–दराज तक के गांवों में शिक्षा के पसरते पैरों से वहां बढ़ती जागरूकता के परिणामस्वरूप 21वीं सदी में इन गांवों और गांववासियों के लिए पूर्व की किसी भी अवधि से अधिक विकास के समुचित अवसर उपलब्ध हो सकेंगे, ऐसी सम्भावनाएं भी हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों पर विशेष ध्यान

यों तो नई सदी दुनिया के सभी लोगों के लिए विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति और विकास के मार्ग प्रशस्त करने के लिए नए जोश, उमंग और उत्साह का संदेश लेकर आई है लेकिन भारत जैसे विविधता–सम्पन्न देश के लिए यह विशेष रूप से शुभ संकेतों का सूचक कही जा सकती है। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद हमारे देशवासियों, विशेष रूप से हमारे गांववासियों, ने जिस आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक और तकनीकी विकास की उत्तरोत्तर उन्नति के स्वप्न संजोए थे यद्यपि स्वतन्त्रता के पिछले 53 वर्षों में तो उन्हें पूरा किया जाना सम्भव नहीं हो सका है लेकिन देश की विशालता और सैकड़ों वर्षों की परतंत्रता के परिप्रेक्ष्य में इसे असफलता की कसौटी मानना भी उचित नहीं होगा। इस अवधि में हम विभिन्न क्षेत्रों में समुचित विकास भले ही नहीं कर पाए हों, परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों के विकास हेतु मार्ग प्रशस्त करने के लिए वहां जिस अवसंरचनात्मक ढांचे को विकसित करने की आवश्यकता थी वह ढांचा सरकारी प्रयत्नों, गैर सरकारी संगठनों की सहायता और जन–सहयोग से हम तैयार कर पाए हैं।

यद्यपि देश के ग्रामीण क्षेत्र अभी तक शहरी क्षेत्रों की तुलना में विकास की दौड़ में काफी पीछे हैं लेकिन पिछले कुछ वर्षों में ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए सरकार का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं और स्वैच्छिक संगठनों के सहयोग से ग्रामीण क्षेत्रों तथा यहां रहने वाले ग्रामवासियों को सभी आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराने के प्रयासों में तेजी लाई जा रही है। उससे इस बात के आसार बने हैं कि नई सदी ग्रामीण क्षेत्रों और ग्रामवासियों के लिए विकास की उपलब्धियों की सदी होगी। विकास की अविरल धारा से अब तक लगभग विमुक्त रहे इन गांवों और गांववासियों को बहुत ही शीघ्र वे सभी सुविधाएं उपलब्ध हो सकेंगी जिनका वे पीढ़ियों से सपना संजोते रहे हैं। वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती हुई साक्षरता, स्वास्थ्य सुविधाएं, आर्थिक गतिविधियां, लघु और कुटीर उद्योग तथा विकास योजनाओं के फैलते प्रभाव ने उनमें जो जागृति पैदा की है उसके सुखद परिणाम नई सदी में ही उन्हें प्राप्त हो सकेंगे, इस सम्भावना से इन्कार करने का कोई कारण दिखाई नहीं दे रहा है।

देश के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास हेतु समन्वित ग्रामीण कार्यक्रम, गांधी ग्राम योजना, अम्बेडकर ग्राम्य विकास योजना, स्वर्ण जयन्ती ग्राम विकास योजना के साथ–साथ वहां आवश्यक सुख–सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए पिछले कुछ वर्षों में सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा, प्राथमिक स्वास्थ्य, शुद्ध पेयजल, बिजली की आपूर्ति, आवासीय सुविधा और सड़कों के विकास के अतिरिक्त ग्रामीण युवकों और युवतियों तथा अन्य ग्रामीण पुरुषों और महिलाओं को रोजगार, और विशेष रूप से स्वरोजगार उपलब्ध कराने हेतु ध्यान केन्द्रित किए जाने के फलस्वरूप यों तो वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग तीन चौथाई लोगों तक इन आवश्यक मूलभूत सुविधाओं को पहुंचाना सम्भव हो सका है लेकिन 21वीं शताब्दी के प्रारम्भ के ही कुछ वर्षों में देश के सभी ग्रामीण क्षेत्रों में सभी लोगों को ये आवश्यक सुविधाएं शीघ्र ही उपलब्ध कराई जा सकें इसके लिए इस कार्य का दायित्व पंचायती राज संस्थाओं और स्वयंसेवी संगठनों के सुपुर्द कर दिया जाना आवश्यक प्रतीत होता है।

देश के ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी का प्रभाव कम करने, वहां के लोगों को आर्थिक विकास के समुचित अवसर उपलब्ध कराने तथा लोगों में सम्पन्नता लाने के उद्देश्य से पिछले कई वर्षों से विभिन्न गरीबी निवारण तथा रोजगार सृजन की योजनाओं को भी संचालित किया जा रहा है। इनमें से जवाहर ग्राम समृद्धि योजना, स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, सुनिश्चित रोजगार योजना, प्रधानमंत्री रोजगार योजना, ट्राइसेम, डवाकरा, सिटरा आदि अनेक योजनाओं के संचालन से गांवों में बेरोजगारी के प्रभाव को कम करने में सफलता मिली है। वर्तमान में इन योजनाओं के संचालन में पंचायती राज संस्थाओं का सहयोग लेने के प्रावधान भी किए गए हैं। इन योजनाओं के भली–भांति संचालन हेतु स्वैच्छिक संगठनों का औपचारिक सहयोग भी विशेष रूप से उपयोगी हो सकता है। अतः इस हेतु भी प्रावधान किए जाने आवश्यक प्रतीत होते हैं तभी इन योजनाओं का व्यापक असर 21वीं शताब्दी के प्रारम्भ के वर्षों में ही दिखाई दे सकेगा और गांवों में रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हो जाने से वहां खुशहाली और सम्पन्नता बढ़ पाएगी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विगत वर्षों में देश के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास हेतु सरकार द्वारा चलाई गई विभिन्न योजनाओं के माध्यम से वहां विकास का मार्ग तो प्रशस्त हुआ ही है साथ ही इन क्षेत्रों में बढ़ती हुई साक्षरता तथा मीडिया की खासी पहुंच ने वहां जागरूकता भी उत्पन्न की है। अब आवश्यकता इस बात की है कि ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता इसी प्रकार बनी रहे, कि विकास के लिए उत्तरदायी कर्मियों पर पर्याप्त नियन्त्रण कायम रखा जा सके और सत्ता के विकेन्द्रीकरण की परिकल्पना को वास्तविक रूप में परिणित करते हुए त्रिस्तरीय पंचायतों को स्वायत्तता देकर जन–सहयोग और जन सहभागिता की परम्परा स्थापित की जा सके। इसके अतिरिक्त स्वयंसेवी संस्थाओं और गैर व्यक्तिगत स्तर से सहयोग प्राप्त करते हुए ग्राम्य विकास के प्रयत्नों में तेजी लाने की भी महती आवश्यकता है। भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण रखे जाने हेतु भी विशेष रणनीति बनाने की और उसको सही मायनों में क्रियान्वित करने की भी आज आवश्यकता है जिसमें स्वैच्छिक संगठनों का भरपूर सहयोग लिया जाना निश्चित रूप से श्रेयस्कर होगा और सदियों से उपेक्षित और पिछड़े रहे गांवों और गांववासियों को इन नई सदी में विकास के समुचित अवसर उपलब्ध कराना सुनिश्चित हो सकेगा। ❑

पंचायती राज के संवैधानिक प्रावधान : एक विश्लेषण

डा. राज मणि त्रिपाठी

73वें संविधान संशोधन अधिनियम के अन्तर्गत 1992 में राज्यों में ठोस, सक्षम और उत्तरदायी पंचायतों की एक त्रि–स्तरीय प्रणाली कायम करने की परिकल्पना की गई थी। सभी राज्यों से यह अपेक्षा थी कि इन्हें पर्याप्त शक्तियां, उत्तरदायित्व और वित्तीय साधन उपलब्ध कराएंगें, जिससे वे आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए कार्यक्रम बना सकें और उन्हें कार्यन्वित कर सकें। इस अधिनियम में विभिन्न स्तरों पर पंचायती राज संस्थाओं के लिए सत्ता के विकेन्द्रीकरण हेतु एक बुनियादी ढांचा तैयार करने का प्रावधान है, लेकिन स्थानीय स्तर पर इसे व्यावहारिक स्वरूप देने का उत्तरदायित्व राज्यों को सौंपा गया है।

नगालैण्ड, मेघालय, मिजोरम तथा मणिपुर के पर्वतीय क्षेत्रों को इस अधिनियम के दायरे से अलग रखा गया। ऐसा इसलिए कि इन राज्यों की अपनी परंपरागत प्रणाली है। जिला स्तर पर पंचायतों से सम्बन्धित प्रावधान पश्चिम बंगाल में दार्जिलिंग जिले के पर्वतीय क्षेत्रों पर लागू नहीं होंगे क्योंकि यहां दार्जिलिंग गोरखा परिषद पहले से विद्यमान है। अधिनियम के अन्तर्गत ग्राम सभा की कल्पना पंचायती राज प्रणाली की बुनियाद के रूप में की गई है। यह राज्य विधान मंडलों द्वारा उन्हें दी गई शक्तियों का प्रयोग करेगी और कार्यों को निष्पादित करेगी।

पंचायती राज प्रणाली में प्रत्येक स्तर पर सभी सीटें प्रत्यक्ष चुनाव के लिए बनाए गए चुनावी क्षेत्रों की जनसंख्या तथा आवंटित सीटों की संख्या के बीच आनुपातिक आधार पर भरी जानी है, जो कि समूचे पंचायत क्षेत्र में एक जैसी होनी चाहिए। प्रत्येक स्तर पर किसी भी पंचायत क्षेत्र में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के आधार पर सीटें आरक्षित होगी तथा कुल सीटों की कम से कम एक–तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी। प्रत्येक स्तर पर पंचायत का कार्यकाल पांच वर्ष का होगा और इसे समय से पहले भंग कर दिए जाने अथवा कार्यकाल समाप्त होने की स्थिति में कार्यकाल के समाप्त होने की तारीख के छह महीने की अवधि के भीतर पंचायत चुनाव कराए जाने चाहिए।

प्रत्येक पांच वर्ष की अवधि हेतु राज्य में एक वित्त आयोग का गठन किया जाएगा जो हर स्तर पर राज्य और पंचायतों के बीच वित्तीय संसाधनों के वितरण और सुपुर्दगी के सिद्धान्तों की समीक्षा करेगा तथा पंचायतों की वित्तीय स्थिति में सुधार लाने के उपाय सुझाएगा। संविधान की 11वीं अनुसूची में 29 विषय सम्मिलित किए गए हैं। इनका उद्देश्य स्थानीय महत्व के कार्यों, योजना बनाने और कार्यान्वयन में पंचायती राज संस्थाओं को महत्वपूर्ण भूमिका सौंपना है। इसी भांति निकायों यानी नगरपालिकाओं को सशक्त

बनाने के लिए संविधान (74वां संशोधन) अधिनियम, 1992 पारित किया गया।

विगत सात वर्षों में नई पंचायती राज व्यवस्था के लागू होने से अनेक अनुभव प्राप्त हुए। इन्हीं अनुभवों के आधार पर यह समीचीन हो जाता है कि 73वें संशोधन के विभिन्न पहलुओं की समीक्षा की जाए और इस निष्कर्ष पर पहुंचा जाए कि यह संविधान संशोधन कहां तक अपने उद्देश्य में कारगर हो रहा है।

ग्राम सभा और उसकी शक्तियां

73वें संविधान संशोधन के अनुसार ग्राम–सभा का अभिप्राय ग्राम स्तर पर पंचायत क्षेत्र के भीतर समाविष्ट किसी ग्राम से सम्बन्धित मतदाता सूची में दर्ज व्यक्तियों से मिल कर बना निकाय है। ग्राम सभा का भौगोलिक क्षेत्र क्या होगा यह निश्चित करना राज्य सरकार पर छोड़ दिया गया था, जिसके कारण भ्रम की स्थिति पैदा हो गई थी। इस कारण कुछ राज्यों ने संविधान के प्रावधान को ही अपने पंचायती राज अधिनियम में रख दिया था। इसका अर्थ यह हुआ विभिन्न राज्यों के पंचायती राज अधिनियमों में सम्पूर्ण ग्राम, एक ग्राम का भाग या ग्रामों के समूह को परिभाषित किया गया है। इन परिस्थितियों में ग्राम सभा का क्षेत्र कहीं गांव को, कहीं गांव के हिस्से को और कहीं पर एक से अधिक गांवों को मान लिया गया।

संविधान में संशोधन करके ग्राम सभा के लिए प्रावधान होना चाहिए कि प्रत्येक गांव स्तर पर ग्राम–सभा हो। ऐसा करने से ग्राम सभाओं में महिलाओं और पुरुषों दोनों की भागीदारी बढ़ेगी।

वास्तव में, एक ग्राम–सभा उन ग्राम पंचायतों के लिए जहां एक ग्राम पंचायत में एक से अधिक गांव है अव्यावहारिक सिद्ध हुई है। यही कारण है कि ग्राम सभा की बैठकों में उपस्थिति बहुत कम देखी गई है। एक गांव से दूसरे गांव तक जाने के लिए महिलाओं तथा बूढों को अधिक परेशानी होती है। इसलिए संविधान में संशोधन करके ग्राम सभा के लिए प्रावधान होना चाहिए कि प्रत्येक गांव स्तर पर ग्राम–सभा हो। ऐसा करने से ग्राम सभाओं में महिलाओं और पुरुषों दोनों की भागीदारी बढ़ेगी।

ग्राम सभा से सम्बन्धित दूसरा पहलू इसकी कार्य और शक्तियों से सम्बन्धित है। 73वें संविधान की धारा 243–'क' के अनुसार 'ग्राम सभा गांव स्तर पर ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कार्यों का निर्वहन कर सकेगी, जो राज्य विधान मंडल द्वारा विधि उपबंधित किए जाएं। इस प्रावधान के अनुसार ग्राम सभा को कितनी शक्ति प्रदान करनी है यह विधान मंडल की कृपा पर आधारित है। विभिन्न राज्यों के पंचायत अधिनियमों में ग्राम सभाओं की शक्तियों का यदि अध्ययन करे तो पाते हैं कि पंजाब तथा तमिलनाडु के पंचायत अधिनियमों के अतिरिक्त अन्य राज्यों में इसे ग्राम पंचायत के विकास कार्यों के बहस की संस्था या सुझाव देने की संस्था बनाया गया है। यही नहीं, ग्राम पंचायत पर ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है कि वह ग्राम सभा के सुझाव माने। यहां ग्राम सभा से सम्बन्धित दो बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रथम इस संस्था को कोई विशेषाधिकार नहीं दिया गया है। दूसरे, जो अधिकार तथा कार्य उसे सौंपे गये हैं, उनको मानना या न मानना ग्राम पंचायत, जो इसकी कार्यकारिणी संस्था है, उसकी इच्छा पर निर्भर करता है। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि ग्राम सभा की शक्तियों तथा कार्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाए, जिससे भ्रम की स्थिति से इन्हें बचाया जाए। इसके लिए संविधान की धारा–243'क' में संशोधन करने की आवश्यकता है।

पंचायतों के अधिकार

संविधान की धारा 243'छ' पंचायतों के अधिकार और शक्तियों के बारे में है। इस धारा के अनुसार राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा पंचायतों को ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान कर सकेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों और ऐसी विधि में पंचायतों को उपयुक्त स्तर पर ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जैसी इसमें विनिर्दिष्ट की जाएं, निम्नलिखित विषयों के सम्बन्ध में शक्तियां और दायित्व निर्वहन के लिए उपलब्ध किए जा सकेंगे:

- आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएं तैयार करना।
- आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की उन योजनाओं को कार्यान्वित करना, जो उन्हें सौंपी जाए। उनके अंतर्गत वे कार्यक्रम भी हों जो ग्यारहवीं अनुसूची में सुचीबद्ध विषयों के संबंध में हैं।

राज्यों के विधान मंडलों ने इस प्रावधान को गम्भीरता से नहीं लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि पंचायतों में कार्य तथा शक्तियों के नाम पर औपचारिकता निभाई है। पंचायतों के तीनों स्तरों के कार्यों को स्पष्ट परिभाषित या सूचीबद्ध नहीं किया गया है।

इसका मुख्य कारण है – 11वीं अनुसूची, जो संविधान में सम्मिलित की गई है, में यह स्पष्ट रूप में परिभाषित नहीं है कि पंचायतों के विभिन्न स्तरों पर क्या–क्या कार्य होंगे। संविधान संशोधन में पंचायतों को स्वायत्त शासन की संस्थाएं कहा गया है। पंचायतों को स्वायत्त शासन की संस्थाएं बनाने के लिए, कार्यात्मक, प्रशासनिक तथा वित्तीय स्वायत्तता होनी आवश्यक है। 73वां संविधान संशोधन यूं तो विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण कानूनी हथियार है लेकिन पंचायतों को स्वायत्तता देने का निर्णय अधिनियम में प्रावधान करने के बजाय राज्य सरकारों पर छोड़ दिया गया।

73वें संविधान संशोधन की 11वीं अनुसूची में 29 कार्य शामिल हैं जिनमें कृषि, सामाजिक वानिकी, लघु और कुटीर उद्योग, पेयजल, सड़क, ग्रामीण विद्युतीकरण, गरीबी निवारण कार्यक्रम, शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई, परिवार कल्याण आदि मुख्य हैं। अनुमान लगाया जा सकता है कि इन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए पंचायतों को कितने तकनीकी और गैर तकनीकी कर्मिकों की आवश्यकता होगी। लेकिन राज्य पंचायत अधिनियमों पर नजर डालने से पता चलता है कि पंचायतों के कार्मिक राज्य सरकार द्वारा ही नियुक्त स्थानान्तरित और नियंत्रित किए जाते हैं। गुजरात और राजस्थान में पंचायत कैडर स्थापित करने का प्रावधान है, लेकिन यहां

पर भी राज्य सरकार का हस्तक्षेप है। इसके अतिरिक्त राज्य सरकार स्तर से अधिकारियों और कर्मचारियों को पंचायतों में 'डेपुटेशन' पर जाने का प्रावधान तो है लेकिन यह पंचायतों से बिना सलाह मशविरे के है। यही नहीं, इन 'डेपुटेशन' पर गए लोगों का कार्यकाल, स्थानान्तरण, तरक्की भी राज्य सरकारों द्वारा ही तय की जाती है। ऐसी स्थिति में पंचायतों

इसलिए आवश्यक हो जाता है कि ग्राम सभा की शक्तियों तथा कार्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाए, जिससे भ्रम की स्थिति से इन्हें बचाया जाए। इसके लिए संविधान की धारा–243'क' में संशोधन करने की आवश्यकता है।

के साथ कार्य कर रहे अधिकारी और कर्मचारी पंचायतों के अध्यक्षों के प्रति उत्तरदायी न होकर विभागीय अधिकारियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं, क्योंकि उनको अपने 'कैरियर' में तरक्की के लिए कार्य मूल्यांकन की अच्छी रिपोर्ट चाहिए।

वित्तीय साधन

पंचायतों को कितने ही कार्य सौंप दिए जाएं अर्थहीन हैं, यदि उनको सम्पन्न करने के लिए पर्याप्त वित्तीय साधन नहीं हैं। विभिन्न पंचायती राज अधिनियमों के वित्त संबंधी प्रावधानों पर नजर डालने पर ऐसा देखने में आया कि संविधान की धारा 243–एच और 243–आई में प्रावधान किया गया है कि पंचायती राज संस्थाओं को कर लगाने तथा वसूलने का अधिकार होगा और राज्य सरकार को हर पांच वर्ष के अन्तराल पर वित्त आयोग गठित करने का निर्देश दिया गया है। यह आयोग पंचायती राज संस्थाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए अपनी सिफारिश राज्यपाल को देगा और विधान सभा की स्वीकृति मिलने के बाद उस पर अमल किया जा सकता है। उस तरह संविधान की धारा–280 में इस बात की व्यवस्था की गई है कि केन्द्रीय वित्त आयोग राष्ट्रपति को पंचायती राज संस्थाओं के वित्त आधार को सुधारने के लिए राज्य की संचित निधि में से व्यवस्था की सिफारिश करे।

लेकिन इन व्यवस्थाओं के बावजूद अध्ययन यह बताते हैं कि विगत पांच वर्षों के कार्य–काल में पंचायती राज संस्थाओं की आर्थिक स्थिति, कुछ अपवादों को छोड़कर, आमतौर पर वैसी ही रही है जैसा संशोधन लागू होने से पहले थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि पंचायती राज संस्थाओं को अपने सीमा–क्षेत्र के अन्दर कर लगाने तथा उसे वसूलने का अधिकार बहुत पहले से ही है लेकिन समस्या इस बात की है कि करों को किस अनुपात में लगाया जाए तथा उनकी वसूली कौन करे। चूंकि कर वसूली का दायित्व किसी खास अधिकारी पर केन्द्रित नहीं किया गया है परिणामस्वरूप कर लगाने का कागजी काम तो पूरा हो गया किन्तु वसूली की बात आती है तो वही निराशाजनक स्थिति पंचायत संस्थाओं के सामने आ जाती है।

चुनाव संबंधी प्रावधान

73वें संविधान संशोधन के जरिये भारतीय संविधान के अनुच्छेद 243–ई में प्रावधान है कि पंचायती राज संस्थाओं का कार्यकाल समाप्त होने अथवा उनको भंग करने के बाद चुनाव कराना बाध्यता होगी। किन्तु राज्य सरकारें पंचायत चुनाव के बारे में संवैधानिक दायित्व के प्रति सजग तथा संवेनदशील नही हैं। इस प्रावधान के बावजूद देश में चुनावों को टालते रहने की प्रवृत्ति मौजूद रही और उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्य में भी उच्चतम न्यायालय के हस्तक्षेप से अप्रैल 1995 में नई पंचायतों के चुनाव सम्पन्न कराए जा सके थे। बिहार राज्य में पिछले 22 वर्षों से पंचायत चुनाव नहीं कराए गए।

पंचायतों को नियंत्रण–मुक्त वातावरण में काम करना आवश्यक है। यह भी जरूरी है कि उनके पास खुद के पर्याप्त कर्मचारी हों। राज्य के पंचायती राज अधिनियमों में पंचायतों का निरीक्षण करने, पंचायतों को बर्खास्त करने, पंचायतों को निर्देश देने, पंचायत प्रतिनिधियों को बर्खास्त करने से सम्बन्धित अनेक प्रावधान हैं किन्तु राज्य सरकार का पंचायतों पर पूर्ण नियंत्रण है। इन सरकारी नियंत्रणों के कारण पंचायती राज संस्थाएं एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पातीं।

पंचायती राज से सम्बन्धित पिछले वर्षों के कुछ शासनादेशों पर गौर किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि कई मामलों में सरकार खुद कोई पहल नहीं करना चाहती और कई मामलों में यदि वह पहल की इच्छुक होती भी है तो कई तरह के दबावों के चलते उसे अपने

सत्ता का विकेन्द्रीकरण सही मायने में तभी संभव होगा जब पंचायतों के अपने स्वतंत्र साधन होंगे, वे वित्त के लिए दूसरों की मोहताज नहीं होंगी, पंचायतों का अपने कर्मचारियों पर नियंत्रण होगा, गांव में जातीय कटुता का अभाव होगा, कमजोर वर्गों तथा महिलाओं के लिए सामाजिक तथा आर्थिक सुरक्षा होगी।

निर्णय को वापस लेना पड़ता है।

कई बार तो ऐसा लगता है कि विभिन्न शासनादेश जारी करके सरकार ऐसा दिखाना चाहती है कि वह पंचायतों को उनके अधिकार और विभाग देने के मामले में बेहद गम्भीर है। लेकिन वास्तव में इस दिशा में कुछ होता दिखाई नहीं देता। पंचायती राज के बारे में जारी शासनादेशों पर गौर किया जाए तो यह आदेश पंचायतों को अधिकारों के हस्तातंरण के लिए कम और भ्रम पैदा करने के लिए अधिक प्रतीत होते हैं। अब तक प्रदेश सरकार इससे सम्बन्धित 200 से अधिक शासनादेश जारी कर चुकी है। ऐसी परिस्थिति में पंचायतें और सरकार के अधिकारी किन–किन शासनदेशों का पालन करें। स्थिति यह है कि आज एक शासनादेश जारी होता है तो कुछ दिनों में उसके विपरीत दूसरा शासनादेश जारी हो जाता है। सरकार पंचायतों को सक्षम बनाने के लिए आज दो कदम आगे बढ़ाती है तो कल तीन कदम पीछे खींच लेती है।

इन सारे तथ्यों से स्पष्ट है कि पंचायतों को कार्यात्मक, वित्तीय एवं प्रशासनिक

(शेष पृष्ठ 18 पर)

ग्रामीण विकास में

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएं पुरुषों से अधिक काम करती हैं लेकिन परिवार की आय में उनका प्रत्यक्ष योगदान न होने के कारण उनकी भूमिका को उचित महत्व नहीं मिलता। लेकिन अब पंचायती राज संस्थाओं में 33 प्रतिशत आरक्षण अनिवार्य कर दिए जाने से महिलाओं को आगे आने का मौका मिला है। उन्होंने अपने आपको कुशल प्रशासक और अनेक समस्याओं के प्रति ज्यादा संवेदनशील सिद्ध किया है। इससे पुरुष वर्ग उनकी महत्ता समझने लगा है और शुरू में महिलाओं को जिस प्रतिरोध का सामना करना पड़ा था, वह अब कम होने लगा है। इसकी चर्चा करते हुए लेखक ने महिलाओं को शिक्षित किए जाने पर जोर दिया है ताकि वे न केवल अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हों अपितु अगली पीढ़ी को उन समस्याओं का सामना न करना पड़े जिनसे उन्हें जूझना पड़ा।

भारत मुख्य रूप से गांवों का देश है। यद्यपि पिछले 25–30 सालों में ग्रामीण क्षेत्रों में खेती की भूमि पर आबादी के बढ़ते हुए दबाव तथा रोजगार के अवसरों में निरंतर कमी के कारण बड़ी संख्या में लोगों का पलायन शहरों की ओर हुआ है, इसके बावजूद आज भी देश की करीब तीन चौथाई आबादी गावों में ही निवास करती है। यह एक दुखद सत्य है कि शहरों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में विकास–कार्य काफी धीमी गति से हुआ है। लेकिन ग्रामीण विकास में महिलाओं की भूमिका में निरंतर वृद्धि हुई है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि ग्रामीण विकास में महिलाओं की भूमिका पुरुषों से अधिक है। परन्तु उनके योगदान का उचित आकलन नहीं होता क्योंकि उनके योगदान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा अप्रत्यक्ष रूप से होता है जिसे उचित मान्यता नहीं मिलती तथा दूसरा कारण उनकी सामाजिक स्थिति का पुरुषों की तुलना में निम्न होना भी है।

ग्रामीण विकास के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक तीन पहलू हैं जो परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। इनमें से आर्थिक विकास में महिलाओं का योगदान सर्वाधिक है। ग्रामीण क्षेत्र में केवल महिलाओं को ही घर का पूरा कार्य करना पड़ता है जिसके लिए उन्हें कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता। वे घर के पुरुष सदस्यों को घरेलू कार्य से मुक्त रखती हैं जिससे उन्हें अपने रोजगार या मजदूरी के लिए अधिक समय उपलब्ध होता है। लेकिन उनकी आय में घर की महिला के योगदान का कोई उल्लेख नहीं होता है।

घरेलू कार्य के अतिरिक्त महिलाएं कृषि कार्य और पशुपालन में भी परिवार के पुरुष सदस्यों को सहयोग देती हैं तथा खेतों में काम करके जानवरों की देखभाल, उनके

रोजगार के अन्य कामों में जैसे– कुम्हार को मिट्टी तैयार करके देना, बने बर्तनों को सुखाना और पकाना, मुर्गीपालन करने वाले के परिवारों में मुर्गियों के दाना–पानी की व्यवस्था करना, मछली पकड़ने वाले परिवारों में उनके जाल बनाना और सुधारना, दूध–दही जमाना तथा मथने का कार्य करना, बांस का सामान बनाने वाले परिवारों में बांसों को छीलने और काटने का कार्य करना जैसे सहायक कार्य भी महिलाओं द्वारा किए जाते हैं। इससे परिवार की आय में वृद्धि होती है। उक्त सहायक कार्यों के अतिरिक्त ग्रामीण महिलाएं स्वतंत्र रूप से भी अपने परिवार की आय बढ़ाने के लिए भी कार्य करती हैं। मध्य प्रदेश में बीड़ी उद्योग आज मुख्यतः ग्रामीण महिला मजदूरों पर आधारित है। सागर, जबलपुर, दमोह जिलों की ग्रामीण महिलाएं अपने खाली समय में बीड़ी बनाने का कार्य करती हैं। आदिवासी

महिलाओं की बढ़ती भूमिका

मधुका ललोराया (श्रीवास्तव)
एवं अरविन्द श्रीवास्तव

क्षेत्रों की ग्रामीण महिलाएं गांवों से लकड़ी के गट्ठे, घास, जंगली फल जैसे – बेर, चिरौंजी आदि एकत्र कर निकटवर्ती शहरों और कस्बों में बेचती हैं। छत्तीसगढ़ क्षेत्र की ग्रामीण महिलाएं न केवल खेतों में पुरुषों से ज्यादा कार्य करती हैं बल्कि निकटवर्ती शहरों में आकर कठोर श्रम वाले मजदूरी के कार्य भी करती हैं। देश के विभिन्न हिस्सों में ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा पारम्परिक कला पर आधारित व्यवसाय को विकसित किया गया है। उक्त व्यवसाय से इन क्षेत्रों में काफी समृद्धि आई है। गुजरात में अमूल डेरी में दूध की आपूर्ति करने में ग्रामीण महिलाओं की सबसे बड़ी भूमिका है। इसी प्रकार राजस्थान में बांधनी साड़ी बनाने की कला, बिहार के मिथला क्षेत्र में मधुबनी पेंटिंग करके वाल हेंगिंग, साड़ियों की छपाई, बधाई पत्र बनाकर बेचे जाने के व्यवसाय ने वहां की ग्रामीण महिलाओं को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति और समृद्धि प्रदान की है। इसी प्रकार राजस्थान की ग्रामीण स्त्रियों द्वारा प्लास्टर आफ पेरिस की मूर्तियां तथा लाख की चूड़ियां बनाने, पंजाब की फुलकारी, कशीदाकारी, लखनऊ की चिकनकारी, बंगाल का कांथा का कार्य और उड़ीसा में पीपली में रंग–बिरंगे छाते तथा अन्य सामान बनाने के कार्य से महिलाओं ने अपने क्षेत्रों को समृद्ध किया है। इसके अतिरिक्त अगरबत्ती बनाना, झाड़ू बनाना, मुर्गी पालना, बड़ी, पापड़ बनाना, अचार बनाना जैसे कामों में महिलाएं बड़ी संख्या में कार्यरत हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा पुरुषों की तुलना में दो गुने से भी अधिक श्रम किया जाता है, जहां एक पुरुष खेती के कार्य में दिन भर में अधिकतम आठ से दस घंटे तथा अन्य मजदूरी या व्यवसाय में दस से बारह घंटे कार्य करता है वहीं एक महिला प्रतिदिन सोलह घंटे कार्य करती है। लेकिन चूंकि प्रत्यक्ष आय में उसका योगदान कम होता है अतः उसके योगदान को वह महत्व प्राप्त नहीं होता जिसकी वह वस्तुतः अधिकारिणी है। केवल उत्तर प्रदेश के कुछ पहाड़ी क्षेत्रों में आज भी महिला–प्रधान समाज है जहां महिलाओं को परिवार की आर्थिक व्यवस्था में उनकी मुख्य भूमिका के कारण प्रमुखता दी जाती है।

जहां तक ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक विकास में महिलाओं की भूमिका का प्रश्न है वह आज भी अधिकांश क्षेत्रों में नगण्य है। इसका प्रमुख कारण उनका अशिक्षित होना, समाज का पुरुष–प्रधान होना तथा परिवार की आय में उनके प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष योगदान के महत्व की गणना न होना है। ग्रामीण विकास के लिए महिलाओं का शिक्षित होना बहुत जरूरी है क्योंकि गांवों में पुरुष वर्ग ज्यादातर घर के बाहर रहता है तथा बच्चों के पालन–पोषण का दायित्व महिलाओं पर ही होता है। महिलाओं के अशिक्षित होने के कारण घर के बच्चों विशेष रूप से बालिकाओं की शिक्षा–दीक्षा पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता है। इसलिए आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का प्रतिशत अत्यन्त कम है। कुछ कक्षाओं बाद पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चों का प्रतिशत अत्यधिक है विशेष रूप से लगभग 90 प्रतिशत बालिकाएं प्राथमिक और माध्यमिक स्तर से ऊपर अध्ययन नहीं कर पातीं। महिलाओं का शिक्षित होना सामाजिक कुरीतियों, अन्धविश्वासों तथा स्वच्छता और स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ाने के लिए भी अधिक आवश्यक है। अशिक्षित और सामाजिक रूप से कमजोर

महिलाएं वस्त्र और कलात्मक वस्तुएं तैयार कर परिवार की आय में योगदान करती हैं

होने के कारण ग्रामीण महिला श्रमिक शोषण का सर्वाधिक शिकार होती हैं। उन्हें अपने कठोर परिश्रम का वह मूल्य प्राप्त नहीं होता जो पुरुष और शिक्षित श्रमिकों को प्राप्त होता है। जहां पुरुष कृषि श्रमिक को 45–50 रुपये प्रति दिन मिलते हैं वहीं महिला श्रमिक को अधिकतम 35 रुपये दिए जाते हैं। अशिक्षित होने के कारण ही हस्तशिल्प व्यवसाय में लगी महिलाओं को उनके उत्पादों का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है तथा बिचौलिये उनके श्रम का बड़ा हिस्सा हड़प जाते हैं। यद्यपि सामाजिक दृष्टि से ग्रामीण महिलाओं की स्थिति आज भी दयनीय है तथापि पिछले कुछ समय में देश के कुछ हिस्सों में ग्रामीण महिलाओं ने अभूतपूर्व जाग्रति का परिचय दिया है। मणिपुर, आंध्र प्रदेश तथा हरियाणा में शराब बंदी लागू करने के पीछे ग्रामीण महिलाओं के आंदोलन की ही एकमात्र भूमिका रही है। मणिपुर में तो ग्रामीण महिलाओं ने न केवल शराब बंदी के लिए आंदोलन चलाया बल्कि शराब पीने वाले पुरुषों का सामाजिक बहिष्कार किया तथा शराब पिए हुए पुरुषों की पिटाई करने तक का आंदोलन चलाया तथा इसमें अपने परिवार के पुरुषों तक को नहीं बख्शा।

ग्रामीण विकास के क्षेत्र में महिलाओं के योगदान का एक और महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि गांवों के आर्थिक विकास में केवल पिछड़े वर्गों और दलित महिलाओं की ही भागीदारी होती है जबकि सामंती परम्परागत संस्कारों से जकड़े होने के कारण आज भी उच्च वर्ग की महिलाएं घर के बाहर किसी प्रकार का कोई श्रम या व्यवसाय करने नहीं निकलती हैं। यह स्थिति शहरों की स्थिति से भिन्न है जहां उच्च तथा मध्यम वर्ग की महिलाएं नौकरी या व्यवसाय में पुरुषों के साथ कंधा मिलाकर चल रही हैं जबकि पिछड़े और दलित वर्ग की महिलाएं कम या अशिक्षित होने के कारण रोजगार की प्रतियोगिता से बाहर रह जाती हैं। गांवों में श्रम कार्य करने वाली महिलाएं सामाजिक तथा आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग की होती हैं अतः उन्हें स्वाभाविक रूप से ज्यादा शोषण का शिकार होना पड़ता है।

ग्रामीण राजनैतिक क्षेत्र में कुछ वर्षों पूर्व तक महिलाओं की भूमिका नगण्य रही है तथा पंचायतों में उनका प्रतिनिधित्व नहीं के बराबर रहा है या केवल गांवों के संपन्न और प्रतिष्ठित परिवारों की महिलाएं ही इक्का–दुक्का रूप से निर्वाचित संस्थाओं में केवल नुमाइश के तौर पर रही हैं लेकिन पंचायतों में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण दिए जाने का कानून लागू होने के उपरान्त गावों की राजनीति में आमूल परिवर्तन हो गया है, तथा आज ग्राम पंचायत से जिला स्तर की संस्थाओं में महिलाएं निर्वाचित होकर ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। यद्यपि महिलाओं के लिए यह नया क्षेत्र है तथा सामन्ती मनोवृत्ति से जकड़े हुए पुरुष–प्रधान समाज में उन्हें पुरुषों की ओर से कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ रहा है परन्तु उसका मुकाबला करते हुए महिलाओं ने अशिक्षित होने के बाद भी अपने आप को ज्यादा संवेदनशील और बेहतर प्रशासक, कम समय में ही सिद्ध कर दिया है। अब विवश होकर राजनैतिक दलों को भी अधिक से अधिक महिलाओं को सम्मानजनक पद देने पड़ रहे हैं। उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि ग्रामीण विकास के क्षेत्र में महिलाओं की अग्रणी भूमिका है तथा राजनैतिक क्षेत्र में उनकी भूमिका बढ़ने से आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में भी उनकी भूमिका में और अधिक वृद्धि होगी तथा उन्हें पहले से बेहतर सम्मान तथा अधिकार हासिल होंगे। महिलाओं की सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में भूमिका बढ़ने से ग्रामीण क्षेत्रों का समग्र विकास भी द्रुत गति से होगा। ❑

भ्रष्टाचार : विकास की राह में एक बड़ी बाधा

डी.आर. कार्तिकेयन*

घोर निराशावादी व्यक्ति भी इस बात से इंकार नहीं कर सकता कि पिछले 50 वर्षों में देश ने सभी क्षेत्रों में प्रगति की है। परन्तु इसके साथ यह भी स्वीकार करना होगा कि यह प्रगति और विकास आम लोगों की आकांक्षाओं और सपनों के अनुरूप नहीं हुआ और न ही यह विकास उच्च वर्ग और नेताओं की आशाओं के अनुरूप हुआ है। व्यापक गरीबी, निरक्षरता और बढ़ती आबादी, विकास की रफ्तार के धीमे होने के मुख्य कारण रहे हैं। इसके साथ चारों ओर व्याप्त भ्रष्टाचार ने भी विकास की गति को धीमा किया है। इससे लोगों में निराशा की भावना का संचार हो रहा है।

आज देश के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती भ्रष्टाचार की है। आजादी के बाद से ही लोगों का ध्यान इसकी तरफ आकृष्ट होना शुरू हो गया था। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता–प्राप्ति के तुरंत बाद भ्रष्टाचार के खतरे से देश को आगाह किया था।

सब तरफ व्याप्त भ्रष्टाचार हमारे समाज और अर्थव्यवस्था को दीमक की तरह चाट रहा है। इसने अर्थव्यवस्था और गरीबी उन्मूलन के प्रयासों को गम्भीर रूप से प्रभावित किया है।

नियंत्रक और महालेखा परीक्षक ने ग्रामीण क्षेत्रों के विशेष कार्यक्रम *समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम* के लिए निर्धारित धनराशि को अन्य मदों पर खर्च किए जाने के अनेक उदाहरण उद्धृत किए हैं। इस कार्यक्रम के लिए निर्धारित राशि में से करोड़ों रुपये एयर कंडीशनरों, रंगीन टेलीविजन सेटों, जीपों, मेटाडोर की खरीद और चाय–बिस्कुट जैसी मदों पर खर्च किए गए।

विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे वित्तीय संस्थानों ने भी पूंजी निवेश और विकास की राह में भ्रष्टाचार को एक बड़ी बाधा माना है। भ्रष्टाचार में रिश्वत देने वाले और लेने वाले दोनों की मिलीभगत होती है लेकिन इससे नुकसान पूरे समाज को होता है।

गुन्नार मिरडल ने ठीक ही कहा है कि "भ्रष्टाचार से विकास की राह में बड़ी बाधाएं पैदा होती हैं।"

सत्ता में बैठे लोगों और आम लोगों में इस बात पर तो सहमति होगी ही कि पिछले 50 वर्षों में भ्रष्टाचार बढ़ा है। भ्रष्ट लोगों की संख्या लगातार बढ़ रही है। हमारे समाचारपत्र हर रोज राजनीति, अफसरशाही और पुलिस में भ्रष्टाचार की खबरों से भरे रहते हैं। हमारी सभी बड़ी अदालतों का ज्यादा समय उच्च पदों पर कार्यरत व्यक्तियों के खिलाफ भ्रष्टाचार के मामलों की सुनवाई में खर्च होता है।

ग्रामीण इलाकों में रहने वाले लोगों को भ्रष्टाचार की वजह से बड़े कष्ट झेलने पड़ते हैं क्योंकि ये लोग न तो ज्यादा पढ़े–लिखे हैं, न उन्हें नियम–कानूनों का ज्ञान है और न उनमें सत्ता सम्पन्न लोगों को चुनौती देने का साहस है। किसी तरह की आर्थिक सहायता, प्रमाण पत्र या मंजूरी लेने के लिए ग्रामवासियों का वास्ता छोटे पदों पर नियुक्त कर्मचारियों से पड़ता है और ये लोग गांववासियों को काफी परेशान करते हैं।

किसानों और गांवों के अन्य कामगारों को विकास, लगान, कृषि, वन ग्रामोद्योग, ग्रामीण आवास आदि विभागों के कर्मचारियों और पुलिस की वजह से काफी परेशानी उठानी पड़ती है। ये लोग अपनी खेती–बाड़ी का काम छोड़ कर इन कर्मचारियों के पीछे–पीछे नहीं घूम सकते और न ही तहसील या ब्लाक स्तर के कार्यालयों में बैठकर घंटों इंतजार कर सकते हैं। उन्हें अपनी खेती–बाड़ी और पशुओं की देखभाल का काम हर रोज निपटाना होता है। अगर वह दूर–दूर स्थित सरकारी दफ्तरों में बैठकर घंटों इंतजार करें तो उनकी खेती और अन्य काम चौपट हो जाएंगे। इसके अलावा अपने काम को जल्दी निपटाने के लिए रिश्वत के रूप में देने के लिए इनके पास पैसे भी नहीं होते।

किसानों और गांव के अन्य गरीबों के लिए सब्सिडी और अन्य अनुदानों के रूप में मंजूर की गई राशि उन तक पूरी नहीं पहुंचती। इस तरह का धन जारी करने वाले अधिकारी या तो अपनी कमीशन काटकर बाकी रकम देते हैं या फिर वे अपनी कमीशन एडवांस में ले लेते हैं। ये अधिकारी दिखाते हैं कि इस तरह धन देकर वे गांव वालों पर बड़ा अहसान कर रहे हैं। अज्ञानवश ग्रामीण भी यही समझते हैं कि ये लोग उन पर अहसान कर रहे हैं। गांववासी नहीं जानते कि जो उन्हें मिल रहा है, वह तो उनका हक है और ये कर्मचारी उनके साथ धोखेबाजी कर रहे हैं, उनका शोषण कर रहे हैं।

भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों पर इस पर रोक लगाने के लिए, ग्रामीणों में इस बात की जागरूकता पैदा की जाए कि उन्हें सब्सिडी और अनुदान के रूप में जो धन मिलता है वह सरकार की नीतियों के कारण मिलता है और यह धन उन्हें सरकारी खजाने से ही मिलता है। लाभार्थियों को बतला दिया जाना चाहिए कि उन्हें इसके लिए कोई रिश्वत या कमीशन देने की जरूरत नहीं है और अगर वे ऐसा करते हैं तो वे गलत काम करते हैं, पाप करते हैं, जुर्म करते हैं।

भ्रष्टाचार फैलने की एक वजह यह भी है कि लोग जो धन उन्हें हक के तौर पर मिलना है उसके लिए इंतजार नहीं करना चाहते, और बार–बार सरकारी दफ्तरों के चक्कर नहीं लगाना चाहते। अगर निम्नलिखित उपाय किए जाएं तो भ्रष्टाचार पर काफी हद तक नियंत्रण पाया जा सकता है :

- लोगों को, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में

* केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के पूर्व निदेशक, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के पूर्व महानिदेशक

रहने वाले लोगों को, सब्सिडी और सरकारी अनुदानों के बारे में उनके हक की पूरी जानकारी दी जाए।

- नीतियों और फाइलों में लिए गए विभिन्न निर्णयों को पारदर्शी बनाया जाए। हर आवेदक को जानने का अधिकार होना चाहिए कि उसका आवेदन पत्र कहां रुका पड़ा है।
- विलम्ब ही भ्रष्टाचार का मुख्य स्रोत है। हर विभागीय अध्यक्ष या हर कार्यालय के प्रमुख को किसी आवेदन या फाइल पर निर्णय लेने के लिए समयावधि निर्धारित कर देनी चाहिए और देखना चाहिए कि किसी भी स्तर पर कार्यवाही में देरी न हो। अगर उसमें देरी होती है तो उसके लिए जो कारण हो वह ऐसा हो जिससे प्रमुख या अध्यक्ष संतुष्ट हो। फाइलों पर कार्यवाही में देर इसलिए न की जाए ताकि लाभार्थी उस पर कार्यवाही तेज करवाने के लिए रकम देने के लिए हाजिर हो।
- जब कभी भी पता चले कि कोई कर्मचारी भ्रष्ट तरीके अपना रहा है, तो उसे तुरंत निलंबित कर देना चाहिए। मुकदमा और विभागीय अनुशासनात्मक कार्यवाही साथ–साथ शुरू कर दी जाए और जल्दी से जल्दी पूरी की जाए। भ्रष्ट तरीके अपनाने वाले व्यक्ति पर बिना कोई दया दिखाए उसे बर्खास्त कर दिया जाना चाहिए।
- जिन भ्रष्ट व्यक्तियों के खिलाफ कानूनी/अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जाती है, उनकी सम्पत्तियों को सील कर दिया जाना चाहिए और उनके दोषी साबित होने पर सरकार को उन सम्पत्तियों को जब्त कर लेना चाहिए। उच्च पदों पर अभी भी अनेक ईमानदार अधिकारी हैं लेकिन साहस की कमी या राजनीतिक दबाव के चलते वे भ्रष्टाचार के खिलाफ सख्त कार्यवाही नहीं कर पाते।
- अधिकारी ऐसे होने चाहिए जो केवल प्रतिभावान और योग्य ही न हों, अपितु ईमानदार और साहसी भी हों। अधिकारी ऐसे हों जिनका दिमाग और रीढ़ की हड्डी दोनों मजबूत हों।
- नियमों को सरल बनाया जाना चाहिए। अनेक कानून ऐसे हैं जिन्हें सीधे सादे ग्रामवासी तो क्या अच्छे पढ़े–लिखे लोग भी नहीं समझ पाते। अनावश्यक कानून खत्म कर दिए जाने चाहिए। कानून और नियम यथासंभव, सरल होने चाहिए।
- देश ने पंचायती राज और सत्ता के विकेन्द्रीकरण के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया है। इसलिए सत्ता का यथासंभव विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए और पंचायतों को अधिकतम अधिकार दिए जाने चाहिए। हालांकि यह जरूरी नहीं कि पंचायतों का नेतृत्व ईमानदार होगा लेकिन फिर भी अगर उनका आचरण भ्रष्ट होगा तो उसका पर्दाफाश होते देर नहीं लगेगी। भ्रष्ट अधिकारियों का तो तबादला हो सकता है इसलिए उनकी उस क्षेत्र के और लोगों के विकास के प्रति कोई प्रतिबद्धता नहीं होती जबकि भ्रष्ट नेतृत्व को तो चुनाव के समय लोगों के पास पुनः निर्वाचित होने के लिए फिर जाना होगा। इसलिए उन्हें आचरण और व्यवहार तो बेहतर रखना ही होगा।
- विभिन्न स्तरों पर अधिकारियों का चयन करते समय यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि वे ईमानदार हों और उस कार्य के योग्य हों जो उन्हें सौंपा जा रहा है। लोकतंत्र में निर्वाचित प्रतिनिधियों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है लेकिन उन्हें अपने नजदीकी अधिकारियों को लाभ पहुंचाने के लिए नियमों की अवहेलना करते हुए तबादलों और पदोन्नतियों जैसे मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

सत्ता में बैठे लोगों और आम लोगों में इस बात पर तो सहमति होगी ही कि पिछले 50 वर्षों में भ्रष्टाचार बढ़ा है। भ्रष्ट लोगों की संख्या लगातार बढ़ रही है। हमारे समाचारपत्र हर रोज राजनीति में, अफसरशाही में और पुलिस में भ्रष्टाचार की खबरों से भरे रहते हैं। हमारी सभी बड़ी अदालतों का ज्यादा समय उच्च पदों पर कार्यरत व्यक्तियों के खिलाफ भ्रष्टाचार के मामलों की सुनवाई में व्यतीत होता है।

राष्ट्र, विभिन्न स्तर पर अधिकारियों और पूरे समाज को ही चारों ओर फैला रहे भ्रष्टाचार के खतरों के प्रति चौकस हो जाना चाहिए, सर्वांगीण ग्रामीण विकास सुनिश्चित करने और देश के मनोबल को उच्च स्तर पर बनाए रखने के लिए हमें भ्रष्टाचार के कैंसर का एकजुट होकर मुकाबला करना होगा। ❑

(पृष्ठ 13 का शेष) **पंचायती राज के संवैधानिक प्रावधान.....**

स्वायत्तता नही है। ऐसा न होना संविधान संशोधन प्रावधान के अनुरूप नही है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि 73वें संविधान संशोधन के बाद सत्ता का विकेन्द्रीकरण अभी तक नहीं हो सका। इसमें वर्णित प्रावधान पूरी तरह लागू नहीं हो पाए हैं। पंचायतें स्वशासन की स्वायत्त इकाई के रूप में अभी प्रतिष्ठापित नही हो सकी हैं, केवल गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश जैसे कुछ राज्यों को छोड़कर अन्य राज्यों में अभी पूरी तौर पर यह व्यवस्था प्रभावी ढंग से लागू नहीं हो सकी है।

73वां संविधान संशोधन गांवों तक सत्ता पहुंचाने तथा निम्न स्तर पर लोकतंत्र को प्रभावी बनाने के क्षेत्र में पूरी तरह सफल नहीं रहा। सत्ता का विकेन्द्रीकरण बनाम केन्द्रीकरण सम्बन्धी विवाद समाज–वैज्ञानिकों और सरकार के नीति–निर्धारकों के लिए आज भी विवादास्पद बना हुआ है।

सत्ता का विकेन्द्रीकरण सही मायने में तभी संभव होगा जब पंचायतों के अपने स्वतंत्र साधन होंगे, वे वित्त के लिए दूसरों की मोहताज नहीं होंगी, पंचायतों का अपने कर्मचारियों पर नियंत्रण होगा, गांव में जातीय कटुता का अभाव होगा, कमजोर वर्गों तथा महिलाओं के लिए सामाजिक तथा आर्थिक सुरक्षा होगी, तथा राज्य सरकारें पंचायतों में दखल देना बन्द करेंगी, साथ ही साथ पंचायत प्रतिनिधियों में अपेक्षित प्रशासनिक तथा वित्तीय कुशलता विकसित होगी। ❑

कृषि क्षेत्र में सुधार की शुरुआत : नई कृषि नीति

डा. जयन्तीलाल भण्डारी

भारतीय किसान लम्बे अर्से से विषम परिस्थितियों में जीवन–यापन कर रहा है। किसानों की बदहाली, कुछ इलाकों को छोड़कर, लगातार गहराती जा रही है। 1950–51 में राष्ट्रीय आय में कृषि की भागीदारी करीब 50 प्रतिशत थी जबकि 1996–97 में, जब सम्पूर्ण देश उदारतावादी नीति अपना चुका था, घटकर सिर्फ 24 प्रतिशत रह गई थी। कृषि पर आश्रित जनसंख्या का घनत्व नहीं के बराबर बदला है। आज कुल आबादी का 75 प्रतिशत भाग ग्रामीण है तथा कृषि पर आश्रित आबादी की आर्थिक हालत अन्य व्यवसायों की तुलना में दयनीय है। इस संदर्भ में कृषि मंत्री का वक्तव्य प्रशंसनीय है कि भारतीय कृषि अब एक अलाभकर धंधा हो गई है तथा इसमें सुधार लाना लाजमी है।

कृषि नीति अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं

कई वर्षों के परिश्रम के बाद केन्द्र सरकार ने एक राष्ट्रीय कृषि नीति तैयार की है। आर्थिक सुधार कार्यक्रम के बीच जब सरकार नई आर्थिक नीतियों की एक के बाद एक घोषणा कर रही थी तब प्रश्न यह उठाया जा रहा था क्या ये आर्थिक नीतियां सिर्फ उद्योग जगत के लिए ही हैं या कृषि जगत के बारे में भी सरकार कुछ सोच रही है। कृषि नीति की घोषणा करके सरकार ने इस तरह के सवालों के न उठने देने की पहल की है। देश की पहली कृषि नीति में संसाधनों तथा प्रौद्योगिकी के बेहतर उपयोग से कृषि विकास दर में चार प्रतिशत सालाना वृद्धि और खाद्य तथा पोषण की सुरक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कृषि क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी को बढ़ावा देने तथा विश्व व्यावार संगठन के प्रावधानों से किसानों के हितों की रक्षा करने पर बल दिया गया है।

जितना समय और परिश्रम इस कृषि नीति को तैयार करने में लगा उससे देश भर के किसानों को इस नीति के उद्देश्यों से काफी अपेक्षाएं थीं जबकि कृषि सम्बन्धी सभी मुद्दे इस नीति में खुलकर नहीं आ सके। जिस देश की दो–तिहाई आबादी कृषि से आजीविका चलाती हो और जो क्षेत्र भारतीय समाज का सांस्कृतिक आधार रहा हो उसे एक सिमटे हुए वक्तव्य में प्रस्तुत कर देना न्यायसंगत नहीं है। यद्यपि कृषि मंत्री ने इस कृषि नीति में विशाल अदोहित क्षमता को वास्तविक रूप देने, तीव्रतर कृषि विकास को समर्थन देने के लिए ग्रामीण अर्थसंरचना को मजबूत करने, मूल्य प्रवर्धन को बढ़ावा देने, कृषि व्यवसाय की गति में तेजी लाने, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन करने, किसानों, खेतिहर मजदूरों और उनके परिवारों का जीवन स्तर सुधारने, शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन को हतोत्साहित करने तथा आर्थिक उदारीकरण और विश्व व्यापारीकरण से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने की परिकल्पना है।

निर्यातोन्मुखी

उपर्युक्त तथ्यों को साकार करने की दिशा में सरकार ने कृषि नीति को निर्यात आधारित घोषित किया है। फलतः नई नीति में कृषि उत्पादों का निर्यात होने के साथ–साथ देश के बाजारों में किसानों को इनकी उपज का सही मूल्य मिले इस पर भी जोर डाला जा रहा है। कृषि निवेशों पर सब्सिडी और प्रमुख कृषि उत्पादों के न्यूनतम समर्थन मूल्य की

वर्तमान व्यवस्था जारी रखने का एलान भी सरकार ने कर दिया है। विश्व व्यापार संगठन के नियमों के अनुरूप विदेशी कृषि उत्पादों के लिए भारतीय बाजार पूर्णतः खोले जाने और आयातित वस्तुओं पर समुचित आयात शुल्क लगाकर भारतीय किसानों के हितों की रक्षा करने में भी सरकार प्रयत्नशील रहेगी। हरित क्रान्ति के प्रयासों के बाद सर्वप्रथम सरकार ने कृषि क्षेत्र को महत्व प्रदान करते हुए एक उल्लेखनीय कदम बढ़ाया है, जिससे नई आर्थिक नीतियों द्वारा कृषि क्षेत्र को प्रभावित करते हुए तथा यथासंभव सरकारी नियन्त्रणों को समाप्त करते हुए इस क्षेत्र का चहुंमुखी विकास भारतीय कृषि को नया आयाम प्रदान कर सके। कृषि उत्पाद के निर्यात में निरन्तर कमी हो रही है। 1999–2000 में देश से 23,823 करोड़ रुपये मूल्य के कृषि उत्पादों का निर्यात किया गया जबकि 1998–99 में यह 25,387 करोड़ रुपया था। निर्यात के घटने की प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए इंद्रधनुषी क्रांति के तहत न केवल कृषि उत्पादों का निर्यात बढ़ाया जाएगा बल्कि देश के बाजारों में किसानों को उनकी उपज का सही मूल्य मिले, इस सम्बन्ध में भी कार्यवाही किए जाने का प्रावधान नीति के लागू होने के साथ किया जाएगा।

आर्थिक सुधार कार्यक्रम के बीच जब सरकार नई आर्थिक नीतियों की एक के बाद एक घोषणा कर रही थी तब प्रश्न यह उठाया जा रहा था क्या ये आर्थिक नीतियां सिर्फ उद्योग जगत के लिए ही हैं या कृषि जगत के बारे में भी सरकार कुछ सोच रही है। कृषि नीति की घोषणा करके सरकार ने इस तरह के सवालों के न उठने देने की पहल की है।

उदारीकरण के अनुरूप

नए आर्थिक परिवेश में उदारीकरण और वैश्वीकरण की सफलता के कारण ही अब कृषि क्षेत्र को निशाना बनाते हुए कृषि विकास दर चार प्रतिशत तक ले जाने के पीछे खाद्य पदार्थों के उत्पादन को वर्तमान 20 करोड़ टन से बढ़ाकर दुगना करना ही नहीं है वरन् कृषि व्यवसाय के लिए कच्चे माल के उत्पादन को भी प्राथमिकता देनी होगी। कृषि नीति के अन्तर्गत भी उदारीकरण को ध्यान में रखते हुए ठेके की खेती तथा लीज की व्यवस्था को जामा पहनाना है, जिसमें निजी पूंजी निवेश को कृषि क्षेत्र में आकर्षित करते हुए बहुराष्ट्रीय कम्पनियां कृषि व्यवसाय के मार्फत भारत की खेती में प्रवेश और पूंजी निवेश कर सकें। संसाधनों तथा प्रौद्योगिकी के बेहतर उपयोग से चार प्रतिशत वृद्धि दर से न केवल कृषि क्षेत्र में अच्छे रोजगार के अवसर उत्पन्न होंगे बल्कि किसानों की आय भी बढ़ेगी तथा निर्यात बढ़ने से विदेशी मुद्रा का अर्जन भी किया जा सकेगा।

भारत की कृषि पर आबादी का दबाव बढ़ रहा है। आज भी देश की 70 प्रतिशत खेती मानसून पर निर्भर है। राष्ट्रीय कृषि नीति में सरकार की चिन्ताएं स्पष्ट तथा नई कृषि नीति लागू होने के उपरान्त लक्ष्य की प्राप्ति के लिए राज्य सरकारों की भूमिका महत्वपूर्ण होगी। सभी राज्य कितने उत्साह से सुझाए गए उपायों को अमल में लाएंगे, नीति की सफलता उस पर निर्भर करेगी। ❑

वरदान

जसविंदर शर्मा

मामूली बातों पर
यूं खुलकर
हंसा भी तो नहीं जा सकता
स्वस्थ मन भी तो चाहिए
हंसने–हंसाने के लिए

अक्सर
बहुत बड़ी खुशी में
आंसू निकल आते हैं

घोर आपदाओं में हंसना
शायद विक्षिप्त दिमाग का काम है।

भगवान स्थित–प्रज्ञ रहते हैं
जब शैतान हंसता है
और पूरा जग रोता है

कभी तो हंसी रोके नहीं रुकती
कभी मात्र मुस्कराने के लिए
इतनी चेष्टा करनी पड़ती है
हर वक्त का रोना
अपने नयन खोना है
मगर हर वक्त हंसना–हंसाना
नेहमत है, वरदान है।

ग्रामीण लघु उद्योग : आधुनिकता की ओर प्रयासरत

एस.एस. सोलंकी*

भारतीय उद्योगों को तीन समूहों में बांटा जा सकता है – भारी, मध्यम तथा लघु उद्योग। पहले तथा दूसरे समूह के उद्योग अपने कारोबार की व्यवस्था करने, तकनीकी कौशल, लाइसेंस, निर्यात सुविधाएं, कच्ची सामग्री आदि जुटाने में समर्थ हैं तथा वित्त संस्थाओं से ऋण और तकनीकी जनशक्ति हासिल करने में भी समर्थ हैं। तीसरे समूह के उद्योगों के साथ ऐसा नहीं है। लघु ग्रामीण उद्योग अपनी तकनीक और प्रौद्योगिकी को उन्नत बनाने, उपकरण प्राप्त करने, कच्ची सामग्री हासिल करने, वाणिज्यिक बैंकों से ऋण लेने, अपने उत्पाद के लिए बाजार तैयार करने और व्यापार संबंधी सूचना प्राप्त करने में परेशानियों का सामना करते हैं।

ग्रामीण उद्योग अर्थव्यवस्था के निर्माण का महत्वपूर्ण अंग है। कृषि क्षेत्र के बाद ये रोजगार के अधिकतम अवसर उपलब्ध कराता है। भारत के कुल निर्यात का एक तिहाई इससे प्राप्त होता है।[1] इस क्षेत्र में स्व–रोजगार की प्रचुरता है जिससे आर्थिक गतिविधियों तथा उद्योगों का व्यापक विस्तार होता है और स्थानीय संसाधनों, मानव तथा सामग्री दोनों का अधिकतम उपयोग भी सुनिश्चित होता रहता है।

ग्रामीण लघु उद्योगों को आठ उपवर्गों में बांटा जा सकता है। खादी, ग्रामोद्योग, हथकरघा, रेशम पालन, हस्तशिल्प, नारियल जटा, लघु स्तरीय उद्योग और पावरलूम। अंतिम दो उपवर्ग, आधुनिक लघु उद्योगों से संबंधित हैं तथा शेष प्रारम्भिक छः उपवर्ग पारंपरिक उद्योगों का अंग हैं।[2]

यदि कृषि, भारतीय अर्थव्यवस्था का हृदय है तो ग्रामीण शिल्प इसके फेफड़ों के समान हैं।

लघु ग्रामीण उद्योग अधिकतर निम्न कारणों से अर्थव्यवस्था की सीमाओं में कार्य करते हैं :[3]

- उपयुक्त उत्पादन विधियों की अक्षमता,
- सहयोगी उत्पादन की कमी,
- वित्त तथा कच्ची सामग्री की कमी,
- बाजार के सीमित अवसर,
- सीमित संचार व्यवस्था,
- उत्पादन बढ़ाने की कार्यनीतियों के बारे में जागरूकता का अभाव,
- कौशल सुधार के लिए सुविधाओं की कमी।

पारंपरिक उद्योगों की उत्पादन गतिविधियों में कच्ची सामग्री के उपयोग, पद्धति और

उन्नत चाक के इस्तेमाल में कुछ कठिनाइयों के कारण परम्परागत चाक आज भी लोकप्रिय

तालिका – 1

हाल के वर्षों में ग्रामीण लघु उद्योगों की दशा में हुए परिवर्तन के आंकड़े

	1984–85				1989–90					1996–97				
	टी आई	एस एस आई	अन्य*	कुल	टी आई	एस एस आई	अन्य*	कुल	% में बढ़त	टी आई	एस एस आई	अन्य*	कुल	% में बढ़त
उत्पादन करोड़ रुपये में	7725.63	56943	1061.37	65730	12369	101945	–	114314	73	41432	253343	–	294775	158
निर्यात करोड़ रुपये में	2207	2350	–	455756	7180.98	7626	–	14806.98	247	30015	2020	–	50215	239
रोजगार करोड़ रुपए में	1.649	1.22	–	3.15	2.205	1.64	–	3.845	22	3.282	2.255	–	55.374	44

स्रोतः 7वीं तथा 8वीं पंचवर्षीय योजना, भारत सरकार

- यह ग्रामीण लघु उद्योग क्षेत्र की इकाइयों से संबंधित है तथा परिचयात्मक भाग में उल्लिखित 8 उच्च भागों में सम्मिलित नहीं
- टी.आई. पारंपरिक उद्योग, एस.एस.आई लघु उद्योग

कार्य संगठन में कुछ सीमान्त परिवर्तन आया है। वर्षों के बाद नगरों में नए उपकरणों तथा प्रौद्योगिकी उपलब्धता को सुगम बनाया गया है। फलस्वरूप उत्पादन प्रक्रिया में कुछ सुधार हुआ है। तीन घटक अर्थात नए उपकरण/प्रौद्योगिकी, कार्य संगठन तथा कच्ची सामग्री का उपयोग कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए मुख्य उपकरण के रूप में माने गए हैं।

ग्रामीण लघु उद्योगों का विकास

इस क्षेत्र के उत्पादों को विदेशी बाजारों तथा बड़े स्तर की इकाइयों द्वारा सहायक सामग्री के रूप में माना गया है। हालांकि ग्रामीण और लघु उद्योग क्षेत्र पर विशेष रूप से, पारंपरिक उद्योग समूह पर विश्व आंकड़ों की कमी है, फिर भी उत्पादन के रूप में अपनाए गए कुछ तरीकों के आधार पर उत्पादन, निर्यात तथा रोजगार संबंधी जो एक बड़ी तस्वीर सामने आती है तालिका–1 में दर्शाई गई है।

तालिका–1 से यह स्पष्ट होता है कि वर्ष 1984–85 के दौरान इस क्षेत्र का उत्पादन 65730 करोड़ रुपये का था तथा इस वर्ष किया गया निर्यात 45575.6 करोड़ रुपये मूल्य का था। इस क्षेत्र में रोजगार में लगे व्यक्ति 1.5 करोड़ थे। 1989–90 तक यह उत्पादन 73 प्रतिशत तक पहुंच गया तथा निर्यात बढ़कर 274 प्रतिशत तक पहुंच गया और रोजगार का स्तर वर्ष 1984–85 के आंकड़ों की तुलना में 22 प्रतिशत तक रहा। वर्ष 1996–97 तक तदनुसार वृद्धि क्रमशः 158 प्रतिशत, 239 प्रतिशत और 44 प्रतिशत थी।

ग्रामीण लघु उद्योग क्षेत्र का कार्य–निष्पादन

ग्रामीण लघु उद्योग क्षेत्र का कार्य दर्शाने वाले आंकड़े तालिका–2 में दिए गए हैं।

तालिका–2 से स्पष्ट है कि वर्तमान दशक के पहले कुछ वर्षों में वृद्धि दर धीमी रही किन्तु बाद में यह दर बढ़ गई। 1990–91 के उत्पादन का मूल्य, 1993–94 में 2,41,648 करोड़ रुपये था। यह 1994–95 में 29,390 करोड़ तक बढ़ गया। जहां तक रोजगार का प्रश्न है, 1993 के दौरान इसमें 1.394 करोड़ तथा 1994–95 में 1.466 करोड़ और 1993–94 के दौरान वार्षिक दर 7.1 प्रतिशत थी जबकि 1994–95 के दौरान यह 5.2 प्रतिशत थी। निर्यात आय वर्ष 1993–94 के दौरान 25,307 करोड़ रुपये और 1994–95 के दौरान 26,400 रुपये थी।

भारत सरकार ने औद्योगिक नीतियों में ग्रामीण लघु उद्योग क्षेत्र को सदैव प्राथमिकता दी है। भारतीय अर्थव्यवस्था के विखंडन के साथ–साथ ग्रामीण लघु उद्योग क्षेत्र को आगे बढ़ाने तथा इसे मजबूत करने के लिए 6 अगस्त 1991 को पालिसी उपायों के नए पैकेजों की घोषणा की गई थी। इस पालिसी उपायों ने इन इकाइयों की आर्थिक जीवन क्षमता में सुधार, व्यवस्थाओं तथा प्रक्रियाओं को सामान्य बनाने पर बल दिया है साथ ही साथ उनकी प्रतिस्पर्धा शक्ति में सुधार, निर्यात वृद्धि, वित्तीय साख में वृद्धि, शीघ्र ऋण भुगतान और क्षेत्र की समग्र आधारभूत संरचना के विकास आदि पर बल दिया है।

नई प्रेरणा और कार्यनीतियां

वर्ष 1991 की औद्योगिक नीति में केवल लघु उद्योग क्षेत्र में ही उत्पादन के लिए 836 उत्पाद आरक्षित किए गए थे। इसके अतिरिक्त इसके अन्य उद्देश्य निम्न प्रकार हैं :

- उत्पादकता सुधारना, गुणवत्ता बढ़ाना, लागत कम करना तथा प्रौद्योगिकी की उन्नति के साथ–साथ आधुनिकीकरण से उत्पादन को नया रूप प्रदान करना।
- साख, शक्ति, कच्ची सामग्री आदि सहित पर्याप्त निवेश की आपूर्ति द्वारा विद्यमान क्षमताओं के उपयोग को अनुकूलतम बनाना।
- प्रचार, मानकीकरण, बाजार सहायता तथा

तालिका – 2

हाल के वर्षों में छोटे पैमाने के उद्योगों का बाजार

इकाई साल	उत्पादन चालू कीमत स्तर करोड़ रुपये में	रोजगार करोड़ में	निर्यात करोड़ रुपये में	सं. एस.एस.आई. इकाई करोड़ में
1991–92	178699	1.298	13,883	0.208
1992–93	209300	1.346	17,784	0.225
1993–94	241648	1.394	25,307	0.238
1994–95	293990	1.466	26,400	0.257

स्रोतः वार्षिक प्रतिवेदन, लघु उद्योग, उद्योग मंत्रालय, 1995–96

सरकारी खरीद कार्यक्रमों में भागीदारी के माध्यम से घरेलू बाजारों में ग्रामीण लघु उत्पादों की भागीदारी बढ़ाना।

- छोटे तथा बड़े उद्योगों के बीच अच्छे संबंध स्थापित करने और उन्हें सुधारने के लिए सहायक कार्यक्रमों को मजबूत बनाना जिससे समग्र औद्योगिक क्षेत्र की सामंजस्यमयी अभिवृद्धि का मार्गदर्शन स्थापित हो सके।
- बेहतर कार्यदशाएं, कल्याणकारी उपायों तथा रोजगार सुरक्षा के माध्यम से कर्मचारियों तथा शिल्पकारों के कल्याण के सामान्य स्तर को सुधारना।[4]

विशेष रूप से, ग्रामीण लघु उद्योग क्षेत्र के उत्पादन तथा निर्यात की वृद्धि की मात्रा को देखते हुए नवीं पंचवर्षीय योजना निम्नलिखित उपायों द्वारा ग्रामीण लघु उद्योग क्षेत्र के सुधार पर बल देती है।[5]

(क) लघु तथा ग्रामीण उद्योगों को उनकी वृद्धि तथा रोजगार को सुगम बनाने के लिए उन्हें प्रोत्साहन और सहायता दी जाएगी। यह सुनिश्चित किया जाएगा कि ऐसे उद्योगों को विदेशी निवेश अस्त–व्यस्त न करे।

(ख) छोटे पैमाने के उद्योगों के लिए आरक्षित मदों की सूची की इस उद्देश्य से समीक्षा की जाएगी कि स्तरीय आर्थिक, प्रौद्योगिकीय उन्नति और निर्यात क्षमताओं आदि के लाभ प्राप्त किए जा सकें।

(ग) छोटे पैमाने के उद्योगों को ऋण उपलब्धता बढ़ाई जाएगी और इन उद्योगों को उदारतापूर्वक ऋण उपलब्ध कराने के लिए वित्तीय संस्थाओं को प्रेरित किया जाएगा।

(घ) खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग की वित्तीय सहायता में वृद्धि की जाएगी ताकि यह "20 लाख रोजगार कार्यक्रम" के तहत अधिक अवसर पैदा करने के योग्य हो सके।

(ड.) ग्रामीण तथा लघु उद्योग क्षेत्र में, प्रौद्योगिकी विकास करना, विशेष रूप से लघु उद्योगों, हथकरघा, पावरलूम, नारियल की जटा, हस्तशिल्प, ऊन आदि पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

(च) असंगठित क्षेत्र के कर्मचारियों की आर्थिक स्थिति तथा कार्य की दशा सुधारने के लिए, स्वैच्छिक संगठनों की भागीदारी से एक बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाया जाएगा। इस क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों के कल्याण के लिए कार्यक्रम शुरू किए जाएंगे तथा उनमें कानूनी अधिकार के बारे में जागरूकता लाने के लिए योजनाएं शुरू की जाएंगी।

पूंजीगत ढांचा

छोटी इकाइयों की पूंजीगत आवश्यकता उनके आकार तथा निर्माण–प्रक्रिया पर निर्भर करती है। स्थानीय साहूकारों के अतिरिक्त छोटी ग्रामीण इकाइयों के संबंधी, व्यवसायी मित्र और संस्थागत वित्तीय सहायता कोष अन्य मुख्य स्रोत हैं।

1. **संस्थाएं**
   - राज्य वित्त निगम
   - राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम
2. **बैंकः क्षेत्र**
   - भारतीय स्टेट बैंक
   - वाणिज्य बैंक
   - राज्य सहकारी/ग्रामीण बैंक
3. **केन्द्र/राज्य सरकार**
   - खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग
   - खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड
   - उद्योग निदेशालय

गांव की छोटी इकाइयां प्रायः वित्तीय अभाव महसूस करती हैं। बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाएं केवल प्रतिष्ठित तथा संगठित इकाइयों को अग्रिम ऋण उपलब्ध कराती हैं। गांव का असंगठित क्षेत्र, विशेष तौर पर ग्रामीण शिल्पकार, वित्तीय संस्थाओं तथा वाणिज्यिक बैंकों द्वारा रखी गई शर्तों को पूरा नहीं कर पाते हैं।

देश के ग्रामीण उद्योग के संगठनात्मक ढांचे का वित्त एक कठोर निकाय बन गया है। इस क्षेत्र में पर्याप्त लाभ नहीं है। सरकार द्वारा उपलब्ध कराई गई वित्तीय सहायता भी अपर्याप्त है तथा एक समूह वर्ग की सिर्फ कुछ इकाइयों को ही उपलब्ध है।[6] ग्रामीण उद्योगों को यदि पर्याप्त तथा समय पर कम ब्याज दर पर वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाए तो वे आधुनिक औजार तथा उपकरणों का अपने उत्पादन और उत्पादन–स्तर में वृद्धि करने में उपयोग कर सकेंगे। इसमें न केवल बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार मिलेगा बल्कि उनका सामाजिक, आर्थिक विकास भी होगा। वित्तीय सहायता की इकाई दर के मूल्यांकन किए जाने की आवश्यकता है।

ऋण सहायता

छोटी इकाइयों को बैंकों द्वारा उपलब्ध कराया गया ऋण, "प्राथमिकता स्रोत" के ऋण स्वरूप माना गया है। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा लघु उद्योगों को दिए गए ऋण का 31 मार्च 1995 तक बकाया अग्रिम कुल 25,843 करोड़

रुपये आंका गया है। राज्य वित्त निगमों द्वारा 31 मार्च 1994 तक कुल संचयी संवितरण 96,452 करोड़ रुपये है। लघु उद्योगों को पर्याप्त ऋण उपलब्ध हो यह सुनिश्चित करने हेतु भारतीय रिजर्व बैंक समय–समय पर दिशा–निर्देश जारी करता है।[7]

प्रत्याशाएं:

हम भारत के लगभग प्रत्येक गांव में ग्रामीण उद्योग देखते हैं। यह उद्योग अपनी अनूठी विशेषता के विकास के लिए बड़ा क्षेत्र तथा क्षमता रखता है। इसमें उत्पाद के सहज गुणों की पारंपरिक विरासत तथा सम्पूर्ण निवेश की आवश्यकता पड़ती है और यह ग्रामीण समूहों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराता है। इसके लिए स्थानीय बाजार वर्ष भर उपलब्ध रहते हैं।

लघु उद्योग क्षेत्र जिसमें छोटा क्षेत्र भी सम्मिलित है, की निश्चित पूंजी 8.5 प्रतिशत आंकी गई है तथा इसमें कर्मचारियों का लगभग 50 प्रतिशत हिस्सा कार्यरत है जबकि बड़े कारखाने, जिनका कुल निश्चित पूंजी में 43 प्रतिशत हिस्सा है, में कुल कर्मचारियों का केवल 7 प्रतिशत ही कार्यरत है।[8] अब समय आ गया है जब ग्रामीण उद्योगों को उनके पारंपरिक उद्योगों से मुक्त कराने के लिए पर्याप्त संस्थागत व्यवस्था की जाए तथा उनको आधुनिक कलात्मक बनाने के लिए नए पैस्चर्स अपनाने को प्रोत्साहित किया जाए। उत्पादों में विविधता तथा उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन ही, इनको बड़े उद्योगों से उत्पन्न खतरों से बचा सकता है। ग्रामीण उद्योगों के बारे में लोगों में जागरूकता पैदा करने तथा शिक्षित बनाने के लिए व्यापक प्रचार अभियान चलाए जाने की आवश्यकता है। इस क्षेत्र को प्रोत्साहित करने के लिए ग्रामीण उद्योगों के अंदर ही प्रशिक्षण सुविधाएं उपलब्ध कराए जाने की भी आवश्यकता है।

संक्षेप में ग्रामीण लघु उद्योग क्षेत्र में विकास की बड़ी संभावनाएं हैं। वस्तुओं की आधुनिक डिजाइन निश्चित रूप से, ग्रामीण शिल्प की तीव्र प्रगति का मार्ग प्रशस्त कर सकती हैं।

इस कार्य के लिए उन्हें अनेक अभिकरणों द्वारा दी जा रही सुविधाओं से लाभ उठाना होगा। इसके साथ–साथ उनके कौशल को भी बढ़ाना होगा जिससे वे अनेक जरूरी वस्तुओं के उत्पादन का काम अपने हाथ में ले सकें।

समस्याएं:

बीसवीं शताब्दी में, भारत में बड़े स्तर के उद्योग बड़ी संख्या में स्थापित किए गए लेकिन असंगठित क्षेत्र, लघु ग्रामीण क्षेत्र, अधिकांशतः नई विकसित प्रौद्योगिकी से अछूता ही रहा।

गांव की छोटी इकाइयां प्रायः वित्तीय अभाव महसूस करती हैं। बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाएं केवल प्रतिष्ठित तथा संगठित इकाइयों को अग्रिम ऋण उपलब्ध कराती हैं। गांव का असंगठित क्षेत्र, विशेष तौर पर ग्रामीण शिल्पकार, वित्तीय संस्थाओं तथा वाणिज्यिक बैंकों द्वारा रखी गई शर्तों को पूरा नहीं कर पाते हैं।

इन उद्योगों ने सामान्यतः सदियों पुराने उत्पादन स्तर को ही बनाए रखा है और पारंपरिक हस्तकलाएं बदलती हुई सामाजिक, आर्थिक आवश्यकताओं के साथ–साथ नहीं बदलीं।

बाजार में आ रहे नए उत्पाद आकर्षक तथा टिकाऊ हैं। यद्यपि ये ग्रामीण उद्योगों द्वारा तैयार उत्पादों की तुलना में काफी महंगे हैं। फिर भी लोग पारंपरिक वस्तुओं की तुलना में नए उत्पादों को खरीदना ही पसन्द करते हैं। ग्रामीण उद्योगों के उत्पाद अनाकर्षक और अपरिष्कृत होते हैं। इसलिए आज ग्रामीण उद्योगों के उत्पाद समाज के सीमित वर्गों में ही बिक पाते हैं। असंगठित क्षेत्र को स्वयं इनकी बिक्री से पर्याप्त मूल्य नहीं मिल पाता है। इस कारण असंगठित क्षेत्र के उद्योगों से शिल्पकार और उनके बच्चे अन्य उद्योगों/व्यवसायों में जाने की कोशिश कर रहे हैं। किंतु उनमें से अधिकतर को सफलता नहीं मिलती और वे बेरोजगार युवकों की श्रेणी में आ जाते हैं। भारत में असंगठित क्षेत्र के उद्योगों के सम्मुख आई समस्याओं का यह एक महत्वपूर्ण पहलू है।

असंगठित क्षेत्र में अधिकांश उद्योग अब भी पारंपरिक प्रौद्योगिकी का ही उपयोग कर रहे हैं। इससे ग्रामीण उद्योगों का न्यूनतम भरण–पोषण स्तर तक ही अस्तित्व बना रहता है। ये तकनीकें अधिकांशतः बार–बार उपयोग करने के बाद जांच और अनुभव आधारित ज्ञान द्वारा विकसित की गई हैं तथा पीढ़ी–दर–पीढ़ी अपनाई जाती रही हैं। हालांकि परम्परागत प्रौद्योगिकियों के कुछ खास लाभ भी हैं, जैसे इनमें स्थानीय कच्चा माल और इंजीनियरिंग सामग्री का उपयोग तथा अपर्याप्त तथा अपरिवर्तनीय सामग्री पर भरोसा नहीं करना जैसा कि बड़ी औद्योगिक इकाइयों की आधुनिक उत्पादन प्रौद्योगिकी की विशालता के साथ होता है। इस समृद्ध अनुभव और अर्जित प्रयोगसिद्ध ज्ञान का प्रयोग करना अत्यंत महत्वपूर्ण है, फिर यह भी महत्वपूर्ण है कि आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान तथा प्रविधियां भी लागू की जाएं जिससे तकनीकों को अधिक व्यवस्थित, कारगर और अधिक उत्पादक बनाया जा सके। इससे भी सर्वोपरि यह आवश्यक है कि इसे असंगठित क्षेत्र के ग्रामीण उद्योगों के मालिकों के लिए अधिक लाभप्रद बनाया जाए।

आधुनिकीकरण कार्यक्रम की सबसे बड़ी आवश्यकता है, बेहतर उत्पादन पद्धति की प्रक्रियाओं को संगठित किया जाए जिससे उत्पादन उपभोग नेटवर्क की गुणवत्ता तथा उत्तमता पर आधारित शक्ति और प्रतियोगिता की उच्च मोल–तोल शक्ति प्राप्त की जा सके। यह केवल तभी संभव हो सकेगा जब बिना प्रभावी सामाजिक नियंत्रण लाए, क्षमता तथा उत्पादकता बढ़ाई जाए, और शिल्पकार के बीच भागीदारी प्रबंध की सच्ची भावना बनी रहे। तकनीकी समस्याओं के अतिरिक्त अन्य समस्याएं भी हैं। उदाहरण के लिए, एक ही स्तर पर असंगठित कुम्हारी क्षेत्र की विभिन्न इकाइयों में तकनीकी संपर्क नहीं है। उनके कार्य–कलापों के विभिन्न स्तरों पर संचालन के एक या विभिन्न स्तरों पर अनेक इकाइयों में संसाधित अथवा अर्ध संसाधित रूप की सामग्री के आयात तथा निर्यात में विवेकपूर्ण संबंध नहीं हैं।

ग्रामीण उद्योगों के असंगठित क्षेत्र के लिए अब भी कोई समान कार्यक्रम नहीं है। सभी ग्रामीण उद्योग समस्याओं तथा कठिनाइयों का अनुभव करते हैं किंतु उनमें अपनी सामूहिक रूप में शिकायत/विरोध दर्ज कराने संबंधी कौशल की कमी है। उनकी दशा सुधारने के

लिए संयुक्त प्रयास नहीं हुए हैं। समस्याएं इतनी बड़ी तथा जटिल हैं कि व्यक्तिगत रूप से उन पर काबू पाना कठिन है।

एक ओर जबकि भारत सरकार ग्रामीण क्षेत्र के निर्धन वर्गों तथा शिल्पकारों की उन्नति के बारे में गम्भीर मालूम पड़ती है, वहीं दूसरी ओर उनके लिए विकसित प्रौद्योगिकियों की सूचियां मुख्य रूप से शासक वर्ग की आवश्यकताओं की ही पूर्ति करती हैं।

असंगठित क्षेत्र के लघु ग्रामीण उद्योगों की यह अवस्था विज्ञान और प्रौद्योगिकी का निवेश करने की छूट नहीं देती जिससे उनका स्तर सुधारने, उनका उत्पादन बढ़ाने तथा ग्राहक संबंध बढ़ाकर उनकी बिक्री में वृद्धि की जा सके। बहरहाल, प्रत्येक इकाई स्वयं आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी निवेश लाने के लिए आवश्यक सम्पूर्ण इन्फ्रास्ट्रक्चर उपलब्ध नहीं कर सकती है।

आर्थिक सुधारों का असर

दुर्भाग्यवश उदारीकरण ने कुछ लोगों के इस विश्वास को भ्रमित कर दिया है कि "आत्म निर्भरता" की कोई प्रासंगिकता नहीं है। दरअसल, भारतीय उद्योग परिसंघ ने एक समय यह सुझाया था कि प्रौद्योगिकी आयात तथा विदेशी सहयोग पर सभी प्रतिबंधों को हटा लिया जाए। वास्तव में प्रतिबंधों को शत प्रतिशत नहीं हटाया जा सकता।

सम्पूर्ण ग्रामीण अर्थव्यवस्था की उन्नति तब तक जीवनक्षम तथा पोषणीय नहीं हो सकती जब तक कि उद्योग, विशेषरूप से भारी उद्योग, कृषि सहित अर्थव्यवस्था के अन्य खंडों की तुलना में अधिक तेजी से नहीं बढ़ते। ग्रामीण उद्योग अपनी पुरानी प्रौद्योगिकियों के साथ–साथ अपने उत्पाद के लगभग 30 प्रतिशत भाग का निर्यात कर रहे थे किंतु इन्होंने धीमे–धीमे पीछे चलना शुरू कर दिया। प्रारंभ में इन दोनों के एकीकरण के लिए उचित जोर नहीं दिया गया था जिसके फलस्वरूप ग्रामीण उद्योग को प्रारंभिक झटका लगा लेकिन शीघ्र ही सरकार ने छोटे और बड़े उद्योगों के बीच संबंध स्थापित करने तथा उन्हें सुधारने के सहायक कार्यक्रमों को मजबूती प्रदान करने के लिए कदम उठाए। इसके अतिरिक्त ग्रामीण उद्योग धीरे–धीरे उन्नत प्रौद्योगिकी तथा आरंभिक गतिरोध दूर करने हेतु प्रशिक्षण के साथ तालमेल बढ़ाकर जानकार हो गए।

दो केस अध्ययन

1. आधुनिक कुंभकार का चाक

असंगठित क्षेत्र के बहुसंख्यक कुंभकार अब भी हाथ से या अपने पारंपरिक चाक से आवश्यक वस्तुएं तैयार कर रहे हैं। पारंपरिक कुंभकार को चाक पर काफी शारीरिक श्रम

लघु उद्योग क्षेत्र जिसमें छोटा क्षेत्र भी सम्मिलित है, की निश्चित पूंजी 8.5 प्रतिशत आंकी गई है तथा इसमें कर्मचारियों का लगभग 50 प्रतिशत हिस्सा कार्यरत है जबकि बड़े कारखाने, जिनका कुल निश्चित पूंजी में 43 प्रतिशत हिस्सा है, में कुल कर्मचारियों का केवल 7 प्रतिशत ही कार्यरत है।

लगाना पड़ता है तथा बहुत कम बर्तन बनाने की क्षमता है। सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के अनेक संगठनों तथा एजेंसियों ने पारंपरिक कुंभकार के चाक को उन्नत बनाने के प्रयास किए हैं। फलस्वरूप, चाक के कुछ उन्नत रूप – इलैक्ट्रीकल तथा नान इलैक्ट्रीकल,– विकसित किए गए तथा ग्रामों के कुछ उद्यमी कुंभकारों द्वारा अपना लिए गए। फिर भी उन्नत चाक तीन कारणों से गरीब तथा जरूरतमंद कुंभकारों के पास पहुंचने में विफल रहा। पहला कारण है, इसका महंगा होना, ये अधिकांश कुंभकारों की क्रय क्षमता के बाहर हैं। दूसरा इनकी मरम्मत कराने के लिए ग्रामीण शिल्पियों को कठिनाई होती है। तीसरा कारण है, अधिकतर गांवों में अधिकांश समय तक विद्युत का उपलब्ध न होना। लेखक जब लघु उद्यमी–कुंभकार के कार्यस्थल पर अपने तिरुवनंतपुरम (केरल) की यात्रा के दौरान पहुंचा तो वहां चार विद्युत चालित चाकों की उसकी छोटी शैड को देखकर आश्चर्यचकित हो गया। आरंभ में कुभंकार ने खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग के माध्यम से एक मान्यता प्राप्त फर्म से दो उन्नत चाक बनवाए। किन्तु उसने इन चाकों से काफी कठिनाई महसूस की। विशेष रूप से इनकी मरम्मत तथा अनुरक्षण के क्षेत्र में चाकों की मरम्मत के लिए कोई भी मैकेनिक समर्थ नहीं था। इसके अतिरिक्त चाकों का निर्माण करने वाली फर्म, कुंभकार उद्यमियों को, चाकों की स्थानीय शिल्पकार से मरम्मत कराने की अनुमति नहीं देती। यह कुंभकार उद्यमियों का दायित्व है कि वह संबंधित फर्म को आवश्यक मरम्मत या समायोजन के लिए रिपोर्ट करें। उसे चाकों की मरम्मत के लिए उन्हें महीनों इंतजार करना पड़ता था।

इस कठिनाई ने उद्यमियों को स्थानीय शिल्पकार तथा तकनीशियनों से यह जानने को प्रेरित किया कि क्या वे उसके लिए उन्नत किस्म का एक प्रोटोटाइप चाक तैयार करने की स्थिति में हैं। संयोग से उनकी संतुष्टि के लिए कुछ वित्तीय सहायता मिलने पर वे प्रोटोटाइप चाक तैयार करने को सहमत हो गए। वित्तीय सहायता मिलने के बाद उन्होंने उक्त चाक का माडल तैयार करने में एक महीने का समय लिया। चाक का परीक्षण करने के बाद उसने चाक में अपनी संतुष्टि के लिए कुछ परिवर्तन करने का सुझाव दिया। चाक का यह माडल अच्छी तरह चल रहा है। इसकी कीमत कम है, ऊंची उत्पादकता है तथा इसको गांवों या निकटवर्ती कस्बों के स्थानीय शिल्पियों/तकनीशियनों द्वारा तैयार किया जा सकता है और इनकी मरम्मत भी की जा सकती है।

2. दोहरे उद्देश्य का डीजल इंजन

विगत कुछ दशकों में, भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में सिंचाई के लिए "किर्लोस्कर डीजल इंजन" लोकप्रिय होता चला आ रहा है। इसकी वर्तमान लागत लगभग 20,000 रुपये है। अधिकतर किसान इस इंजन का उपयोग अपने सिंचाई कार्यों के लिए वर्ष में दो या तीन महीने ही करते हैं, शेष महीने यह बेकार पड़ा रहता है। किसानों को अपनी कृषि उपज को खेतों से घर तक लाने तथा स्थानीय बाजार आदि और बीजों, उर्वरकों और कृषि उपकरणों को शहर से गांव लाने–ले जाने हेतु आवश्यकता होती है। बड़े किसानों को कृषि और परिवहन कार्य के लिए बैलगाड़ी या ट्रैक्टर की जरूरत पड़ती है।

छोटे तथा मध्यम किसान ऐसा खर्च वहन नहीं कर सकते। ग्रामीण किसानों के सामने

यह एक बड़ी समस्या थी। हरियाणा राज्य के रोहतक जिले के एक उद्यमी लौहार ने 1972–73 में एक समाधान ढूंढ़ निकाला जिसके द्वारा किर्लोस्कर डीजल इंजन का सिंचाई और परिवहन दोनों उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है। उसने निकटवर्ती कस्बे के तकनीशियनों की सहायता से इंजन को एक ट्राली के साथ जोड़ने की युक्ति सोची। यह परिवर्तन प्रदर्शन के बाद किसानों ने शीघ्रता से स्वीकार कर लिया। इस मोटरयुक्त ट्राली की, इंजन की कीमत सहित, कुल लागत लगभग 40,000 रुपये है। यह मोटरयुक्त गाड़ी अब भारत के अनेक राज्यों में अनेक ग्रामीणों द्वारा प्रयोग की जा रही है। शिल्पकारों तथा ग्रामीणों द्वारा इसको विभिन्न स्थानीय नाम जैसे – जुगाड़, मारुता व स्काई लैब आदि दिए गए हैं।

जुगाड़ की तकनीकी–आर्थिक व्यावहार्यता

आज अनेक राज्यों के सैकड़ों ग्रामीण शिल्पकार और कस्बे के तकनीशियन इस युक्ति (जुगाड़) के निर्माण में बिना किसी शोध, विकास और वित्तीय सहायता के लगे हुए हैं।

शिल्पकारों द्वारा तैयार "जुगाड़" की उपयोगिता तथा तकनीकी–आर्थिक व्यावहार्यता सुनिश्चित करने के लिए कुछ किसानों, शिल्पकारों तथा तकनीशियनों से बात की गई। अनेक ऐसे किसानों ने जिन्होंने 10 या 15 वर्ष पहले से जुगाड़ खरीदा था, बताया कि उन्होंने कभी भी कोई तकनीकी समस्या नहीं उठाई। दरअसल, वे स्वयं ही किसी प्रकार की समस्या होने पर इसकी मरम्मत कर लेते हैं। यह मोटरयुक्त जुगाड़ एक बार में 60 लोगों को या 20 क्विंटल भार को ग्रामीण तथा शहरी सड़कों पर ले जा सकती है।

भूतल परिवहन मंत्रालय ने कुछ समय पहले जुगाड़ से संबंधित तकनीकी–आर्थिक तथा पर्यावरणीय मुद्दों पर अध्ययन करने के लिए रेल इंडिया तकनीकी–आर्थिक संगठन (राइट्स) से कहा था। राइट्स ने अपनी रिपोर्ट में उल्लेख किया है कि ग्रामीण क्षेत्रों के लिए जुगाड़ सबसे सस्ता बहु–उद्देश्यीय वाहन है। इसके अतिरिक्त यह वाहन टैम्पों आदि की तुलना में कम प्रदूषण तथा आवाज करता है। राइट्स ने संस्तुति की है कि जुगाड़ को सरकार द्वारा मान्यता दी जाए तथा इसे पंजीकरण के लिए मोटरयुक्त वाहनों की सूची में शामिल किया जाए।

मुख्य मुद्दे

ऐतिहासिक अनुसंधान ने स्पष्ट किया कि किसी भी देश में अधिकांश तकनीकी तथा

आज ग्रामीण उद्योगों के उत्पाद समाज के सीमित वर्गों में ही बिक पाते हैं। असंगठित क्षेत्र को स्वयं इनकी बिक्री से पर्याप्त मूल्य नहीं मिल पाता है। इस कारण असंगठित क्षेत्र के उद्योगों से शिल्पकार और उनके बच्चे अन्य उद्योगों/व्यवसायों में जाने की कोशिश कर रहे हैं।

सामाजिक परिवर्तन पहले अनुभव पर आधारित थे। भारतीय ग्रामीण उद्योग एक अच्छा तकनीकी आधार ज्ञान रखता है। ये उपभोक्ताओं के साथ सम्पर्क करता है तथा उसके बाद ग्रामीण तथा कस्बाई स्तर पर परिवर्तन लाता है। ये आविष्कार ग्रामीण उद्यमियों द्वारा लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए ही किए जाते हैं। ग्रामीण जनता इन्हें बिना किसी सरकारी या गैर–सरकारी हस्तक्षेप के और किसी आर्थिक सहायता की मांग किए बिना अपना लेती है।

सुझाव

पर्याप्त पूंजी निवेश करते हुए, लघु ग्रामीण क्षेत्र का पारंपरिक कौशल तथा कार्यकुशलता सुधारने के लिए नीतिगत उपाय किए जाएं। नई उद्योग योजना के अतिरिक्त अनेक स्तर के उत्पादन को इकाई स्तर की सहायता दी जानी अनिवार्य है। असंगठित ग्रामीण उद्योग क्षेत्र के लिए सांस्थानिक प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किए जाएं। ग्रामीण उद्योग के विकास तथा आधुनिकीकरण के लिए, नए डिजाइन, नए उपकरण तथा नई तकनीकें उपलब्ध कराई जाएं। ग्रामीण उद्योगों के वास्तविक हितों के लिए, सामान्य सेवा केन्द्र तथा प्रौद्योगिकी केन्द्र स्थापित किए जाएं। घरेलू बाजार के लिए ग्रामीण उद्योग द्वारा तैयार वस्तुओं की न्यूनतम लागत तथा विक्रय बढ़ाने के लिए एक महत्वपूर्ण नीति निर्णय लिया जाए। असंगठित लघु ग्रामीण उद्योग क्षेत्र, को आर्थिक सहायता तथा प्रोत्साहन के रूप में सरकार से काफी सहायता की जरूरत है।

असंगठित लघु ग्रामीण उद्योग क्षेत्र की कार्यनिष्पादकता, दशा और पूंजीगत आवश्यकताओं को जानने, मूल्यांकन करने तथा विकसित करने के लिए, बैंकों को भी प्रशिक्षण की जरूरत है। भारत में असंगठित ग्रामीण उद्योग क्षेत्र की सहायता देने वाले वर्तमान में, उद्योग विभाग, खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग/बोर्ड, जिला ग्रामीण विकास अभिकरण, जिला उद्योग केन्द्र, विशेष निगम आदि हैं। इन योजनाओं का कार्यान्वयन, इन अभिकरणों के बीच समन्वय की कमी से पूर्णरूप से नहीं हो पाता।

यही समय है जब हम असंगठित क्षेत्र के लघु ग्रामीण उद्योग से ग्रामीण उद्योग वस्तुओं के उपभोक्ताओं के बीच क्वालिटी कन्ट्रोल प्रक्रिया तथा क्वालिटी जागरूकता पैदा करने की कोशिश करें। ऐसे ग्रामीण उद्योगों द्वारा तैयार वस्तुओं के निर्यात के लिए, अंतरराष्ट्रीय बाजार प्रक्रिया तलाशने हेतु पर्याप्त अवसर हैं। इनकी कुछ देशों में अधिक मांग है। इसके लिए, निर्यात वस्तुओं की क्वालिटी ऊंची रखने के लिए सजग प्रयास किए जाएं।

उत्पाद के लिए बाजार

कुछ विपणन अभिकरणों जैसे सुपर बाजार (शहरी क्षेत्र में) की भागीदारी अनिवार्य है। असंगठित क्षेत्र के कुछ उत्पाद अच्छा भाव लेते हैं, किन्तु ये लोकप्रिय नहीं होते। अतः इन उत्पादों के नाम तथा इनके ब्रांड की खूबियों को विज्ञापित करने और बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय, राज्य, जिला तथा ब्लाक स्तर पर संगठनों द्वारा व्यापक प्रयास करने की जरूरत है। ग्रामीण उद्योग के ऐसे उत्पाद, अनेक राज्य और राष्ट्रीय स्तर के एम्पोरियम तथा विंडों शापों की प्रदर्शनी के लिए भी रखे जाने चाहिए। असंगठित क्षेत्र में सिर्फ स्थानीय कौशल या स्थानीय संसाधन ही उपयोग किए जाते हैं। जिला तथा राज्य स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय संबंध के साथ कौशल का हस्तांतरण, ग्रामीण उद्योग गतिविधि बढ़ाने में काफी सहायक होगा। जहां तक ग्रामीण उद्योग उत्पादों की

मार्किटिंग का प्रश्न है "वन विंडो सर्विस" को प्रैक्टीकल रूप देना दूसरा तरीका है।

ग्रामीण उद्योगों के विकास के लिए सरकार द्वारा घोषित रियायत और लाभ सामान्य रूप से अनुभवी तथा बुद्धिजीवियों द्वारा हथिया लिए जाते हैं। संबंधित इकाइयां अधिकांशतः पारंपरिक उद्यमियों द्वारा संचालित हैं जो उपलब्ध प्रोत्साहन योजनाओं के बारे में जानकारी नहीं रखते। अतः वे अपने विकास के लिए ऐसी सुविधाओं का उपयोग करने में असमर्थ हैं।

छोटे उद्यमों के लिए संबंधित सरकारी अभिकरणों को प्रशासनिक और नियामक प्रक्रिया कम तथा सरल करनी चाहिए। लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भागीदारी प्रबंध पर जवाबदेही द्वारा भरोसा रखना अनिवार्य है। सरकार को विक्रेन्द्रीकृत स्तर पर (जिला/ब्लाक) अनुसंधान और प्रौद्योगिकी केन्द्रों की भूमिका मजबूत करनी चाहिए।

आधुनिकीकरण की जरूरत

कोई भी उद्योग, आर्थिक रूप से तब तक समृद्ध नहीं हो सकता, जब तक वह प्रौद्योगिकी और विज्ञान के लाभों और योगदानों को अंगीकर करने में समर्थ नहीं हो जाता। कच्ची सामग्री की कीमतों में तीव्र वृद्धि, मजदूरी तथा उद्योग द्वारा जरूरी अन्य निवेश, आधुनिक विज्ञान की तेजी से बदलती अभिरुचियां, आवश्यकताओं को देखते हुए उपभोक्ताओं आदि की तरफ से क्वालिटी जागरूकता किसी उद्योग के आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक है। इस संबंध में लघु ग्रामीण उद्योग कोई अपवाद नहीं है। इसके लिए इन उद्योगों को संगठित होने की जरूरत है। अधिकतम लाभ, उच्च गुणता उत्पाद, आकर्षक डिजाइन आदि विशेषताएं उपलब्ध करानी होंगी जो आधुनिक समाज को स्वीकार्य हों।

वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी अनुसंधान के लाभों के संबंध में भारत को बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। निर्धन वर्ग और शिल्पकार वैज्ञानिक अनुसंधानों के परिणामों से अधिक लाभ नहीं उठा पाते।

ग्रामीण उद्योगों के अधिकांश मालिक अशिक्षित हैं। चूंकि पारंपरिक क्राफ्ट आधारित उद्योग पारिवारिक सदस्यों द्वारा संचालित होते हैं। क्राफ्ट कौशल एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाता है। प्रत्येक पारिवारिक सदस्य, बचपन से क्राफ्ट का कार्य करना आरम्भ कर देता है। इन्हें अपने क्षेत्र में औपचारिक प्रशिक्षण का मुश्किल से ही अवसर मिलता है। इस विशेष समूह को अपनी शक्ति और समस्याओं को पहचानने की जरूरत है।

संदर्भ :

1. सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–90) तथा ग्रामीण औद्योगीकरण। भविष्य योजना, संपादक, सुरेन्द्र सिंह तथा के तावरी, विकास पब्लिशिंग हाऊस, प्रा.लि. 1993 मु.पृ. 143–156।
2. सातवीं पंवर्षीय योजना (1985–90), खंड 2, अध्याय–4 ग्रामीण तथा लघु उद्योग।
3. एस.एस. सोलंकी व एम.ए. कुरैशी, ग्रामीण कुम्हारी उद्योग–एक केस अध्ययन, कुरुक्षेत्र, फरवरी, 1998, मु.पृ. 3–16।
4. सातवीं पंववर्षीय योजना (1985–90) खंड 2, अध्याय–4, ग्रामीण तथा लघु उद्योग।
5. नवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002), भारत सरकार का अप्रोच पेपर।
6. एस.एस. सोलंकी व एम.ए. कुरैशी एवं डा. अशोक जैन, राष्ट्रीय विज्ञान प्रौद्योगिकी तथा विकास अध्ययन संस्थान, असंगठित क्षेत्र में पाटरी एंड सिरेमिक गुड्स का टैक्ना–इकोनोमिक अध्ययनः कुंभकारों के असंगठित क्षेत्र पर एक रिपोर्ट।
7. वार्षिक प्रतिवेदन (1995–96), अध्याय II एस एस आई तथा ए आर आई विभागों की भूमिका, उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार।
8. के.कृष्णा सिन्हा, रेशनल बिहाइंड रूरल इंडस्ट्रीज, कुरुक्षेत्र, खंड 30 (7), 1990, मु.पृ. 49–302।
9. एस.एस. सोलंकी, "माडर्न टैक्नोलाजी एंड दी इंडियन रूरल आर्टीजन, साइंस टैक्नोलाजी एंड डेवलेपमेन्ट" खंड 2, सं. 3 फ्रेंक कैरा, लन्दन, 1993।

सादगी की पराकाष्ठा

विक्रम 'वसंत'

एक बार भारत के प्रथम गृहमंत्री लौह–पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल की बेटी मणिबेन अपने पिता को कुछ दवाई पिला रही थीं कि वरिष्ठ कांग्रेसी नेता महावीर त्यागी अपने कुछ साथियों के साथ कमरे में दाखिल हुए।

त्यागी जी ने देखा कि मणिबेन की धोती में जगह–जगह पैबंद लगे हैं। यह देखकर त्यागी जी ने कहा "मणिबेन, तुम तो अपने को बहुत बड़ा आदमी मानती हो। तुम एक ऐसे बाप की बेटी हो जिसने साल भर में इतना बड़ा चक्रवर्ती राज्य स्थापित किया है, जितना बड़ा न अकबर का था न अशोक का। ऐसे बड़े सरदार की बेटी होकर तुम्हें इस तरह के दसियों पैबंदों से गुथी धोती पहनने में शर्म नहीं आती?

मणिबेन ने कहा "शर्म आए उन लोगों को जो झूठ बोलते हैं, बेईमानी करते और शेखी बघारते हैं।"

त्यागी जी ने पुनः कहा, "यदि इसी शहर में निकल जाओ तो लोग तुम्हारे हाथ में दो पैसे यह कहकर रख देंगे कि भिखारिन जा रही है।"

यह बात सुन कर हंसते हुए सरदार पटेल बोले "यह तो बहुत अच्छा होगा, मेरी दवाइयों के लिए पैसे इकट्ठे कर लाएगी।"

वहां डा. सुशीला नायर भी थीं उन्होंने बात को काटते हुए कहा "त्यागी जी! मणिबेन स्वयं सूत कात कर सरदार साहब के कपड़े बनवाती हैं। जब उनके धोती–कुर्ते फट जाते हैं तो उन्हीं को काट कर मणिबेन अपने लिए धोती ब्लाउज बनाती हैं।"

सभी उपस्थित लोग बोल उठे "ओह कितनी पवित्र आत्मा है मणिबेन!" तब सरदार ने कहा, "अरे भाई! गरीब आदमी की बेटी है, अच्छे कपड़े कहां से लाए।"

उसका बाप कमाता थोड़े ही है। उन्होंने अपने चश्मे का 20 वर्ष पुराना केस, तीस बरस पुरानी घड़ी और चश्मे की कमानी दिखाई जिसके दूसरी ओर धागा बंधा था।"

सत्यमेव जयते

भारतीय गणतंत्र - स्वर्ण जयन्ती समारोह

कार्यान्वयन समिति
संस्कृति विभाग, भारत सरकार
एवं
खादी और ग्रामोद्योग आयोग

कामये दुःखतप्तानाम्।
प्राणिनाम् आर्तिनाशनम्॥

भारत के पुनरोत्थान के लिये विकास सुधारों पर राष्ट्रीय चर्चा

हेतु आपके सुझाव आमंत्रित करते हैं।

"मैं आपको एक ताबीज दूंगा। जब कभी आपको संदेह हो या जब आप बहुत स्वार्थी हो जायें तो ऐसा करें कि आप उस गरीबतम और निर्बलतम व्यक्ति के चेहरे का स्मरण करें जिसे आपने देखा हो और अपने-आप से पूछें कि जो करने का विचार आप कर रहे हैं क्या वह उसके किसी काम आयेगा ? क्या इससे उसे कुछ लाभ मिलेगा ? क्या यह उसे इस योग्य बनायेगा कि वह अपने जीवन और भाग्य पर नियंत्रण कर सके। अन्य शब्दों में, क्या वह भूखे और आध्यात्मिक रुप से लाखों भूखों को स्वराज का मार्ग दिखा सकेगा ?"

- महात्मा गांधी

आपके सुझाव अमूल्य हैं

सुझाव भेजें : वेबसाइट : www.nationaldebate.nic.in
अथवा
समन्वयक, भारतीय गणतंत्र का स्वर्ण जयन्ती समारोह अनुभाग
खादी और ग्रामोद्योग आयोग
ग्रामोदय, 3, इर्ला रोड, विले पार्ले (पश्चिम), मुम्बई - 400 056
ई-मेल : conskvic @ vsnl.net

आदिवासी विकास के लिए विशेष रणनीति, राँची, नवम्बर 12-14, 2000
विकास में महिलाओं की भूमिका, स्वरोजगार प्राप्त महिला संघ,(सेवा) अहमदाबाद, नवम्बर 17, 2000
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी नीति , भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, दिल्ली, नवम्बर 18-19, 2000
प्राकृतिक संसाधनों का प्रबन्धन और स्थायी विकास, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, गुवाहाटी, नवम्बर 21 - 23, 2000
ग्रामीण क्षेत्र का सुदृढीकरण, वर्धा, नवम्बर 24-25, 2000
आत्म निरीक्षण तथा भावी परिदृश्य, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, दिल्ली, नवम्बर 27-28, 2000
विकास पर राष्ट्रीय संवाद, भारतीय प्रबन्ध संस्थान, बंगलोर, दिसम्बर 8-10, 2000

डा. महेश शर्मा
(अध्यक्ष, खादी और ग्रामोद्योग आयोग)
अध्यक्ष

डा. एम. राम मोहन राव
(निदेशक, भारतीय प्रबंध सस्थान, बंगलोर)
सह-अध्यक्ष

राष्ट्रीय आयोजन समिति

साक्षरता से ही विकास की गति में वृद्धि संभव

शैलेश कुमार श्रीवास्तव

भारत 1947 से ही विकासशील देश के रूप में जाना जाता रहा है। हालांकि देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और बौद्धिक क्षेत्रों में बड़ी तेजी से विकास हुआ है, बदलाव भी दिखाई देता है परन्तु देश की समग्र स्थिति में कोई खास–परिवर्तन नही हुआ है। आजादी के समय की तैंतीस करोड़ जनसंख्या आज शताब्दी के अन्त में एक अरब के आंकड़े को पार कर गई है। कृषि, उद्योग और व्यापार में अतिशय विकास के बाद भी देश की ढांचागत सुविधाओं में कोई अन्तर नहीं आ पाया है। जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में गरीबी की सीमारेखा के नीचे रहने वालों की संख्या लगातार बढ़ती गई है। देश की जनसंख्या के मात्र 15 प्रतिशत उच्च वर्ग ने देश के संसाधनों का सारा लाभ अपने पक्ष में कर रखा है। जो थोड़ा बहुत लाभ गरीब बहुसंख्यकों को मिलता है वह उनके लिए ऊंट के मुह में जीरा ही साबित होता है। देश का सुविधाभोगी वर्ग नगरों और कस्बों में उपलब्ध सारी सुविधाओं का भरपूर उपभोग करता है, परन्तु देश की बहुसंख्यक (85 प्रतिशत) जनसंख्या गांवों और शहरों में बड़ी ही अमानवीय परिस्थितियों में अपना जीवन–निर्वाह करती है। निर्धनता, भूख और बीमारियों से ग्रस्त बहुसंख्यक भारतीय जनता बड़ी ही दयनीय स्थिति में है। बेरोजगारी की समस्या विकट है। इस स्थिति के कई मूलभूत कारणों पर पड़ताल करने पर जो सच्चाई सामने आती है, वह है बहुसंख्यक भारतीय जनता की निरक्षता और अशिक्षा।

निरक्षरता और अशिक्षा

देश की जनता दुर्दशाग्रस्त है, इसके कई कारण हैं। ऊपर से देखने पर यह प्रशासन और योजनाओं की विफलता के कारण उत्पन्न

साक्षरता से महिलाओं में जागरूकता

स्थिति मानी जा सकती है, पर सच्चाई यह है कि प्रशासन के लोकहितकारी स्वरूप का तथा सरकारी योजनाओं का जनता अपने पक्ष में कोई सार्थक उपयोग नहीं कर पाई है। अपनी इस स्थिति के लिए जनता भी कहीं न कहीं जिम्मेदार है। वह अपने श्रम का–वैज्ञानिक ढंग से उपयोग नहीं कर पाती, अपने आप को जीवन की मूलभूत सुविधाओं के लिए सही

बिहार देश का एकमात्र ऐसा राज्य है जिसके उपलब्ध संसाधन (खनिज और मानव) पूरे एशिया को स्वर्ग बना सकते हैं। ऐसे राज्य की 85 प्रतिशत जनता अमानवीय और नारकीय परिस्थितियों में रहती हुई विश्व की सारी उपलब्धियों को नकार रही है। स्पष्ट है यहां शिक्षा और साक्षरता के अकाल के कारण ही ऐसा है।

ढंग से प्रस्तुत नहीं कर पाती है। बहुसंख्यक निरक्षर जनता स्वयं के लिए चलाए गए लोककल्याणकारी कार्यों के बारे में अनभिज्ञ रहती है, फलतः सभी जनहित कार्यक्रमों का लाभ विशाल नौकरशाही मनमाने ढंग से उठाती है। वृहद खेतिहर जनता खेतों में सदियों पुराने परम्परागत उपकरणों–प्रविधिओं और घटिया बीजों का उपयोग करते हुए कृषि के साथ–साथ अपने मूल्यवान श्रम को बरबाद करती है और अपने गुजारे भर का उत्पादन भी नहीं ले पाती है।

इन सारी भयावह स्थितियों की जांच करते हुए यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि जनता की इस दुर्दशा का कारण क्या है। अपने मूलस्वरूप में यह कारण दुर्दशाग्रस्त जनता की जागरूकता में कमी का लगता है। यह कमी–उनकी अशिक्षा और अज्ञानता के कारण है और अशिक्षा और अज्ञानता का कारण है उनकी निरक्षता। बहुसंख्यक जनता निरक्षर है, इसलिए अज्ञानता के अंधकूप में पड़ी हुई है। इन सारी समस्याओं का निवारण विशाल बहुजन को साक्षर बनाकर ही किया जा सकता है। साक्षरता कार्यक्रम अपने इन्हीं अर्थों में जनता की सर्वांगीण समझ और विकास के लिए वरदान स्वरूप है।

साक्षरता और विकास में सहसंबंध

साक्षरता का विकास से सीधा और स्पष्ट संबंध है। साक्षरता शिक्षा को बढ़ावा देती है, ज्ञान के लिए प्रेरित करती है, इसलिए मानव की समझ और सामंजस्य की स्थिति में गुणात्मक सुधार आता है, जो उसके चतुर्दिक विकास के रास्ते खोल देता है। साक्षरता केवल शिक्षा द्वारा ही विकास को प्रभावित नहीं करती, बल्कि जागरूकता और समझदारी पूर्ण दृष्टिकोण विकसित करके उसका सार्थक उपयोग सुनिश्चित करती है।

एक साक्षर व्यक्ति अपनी जागरूकता, सुलझे हुए दृष्टिकोण और अपने अध्ययन द्वारा अर्जित ज्ञान से अपने विकास के नए–नए रास्ते खोलता है। इसके लिए विकसित देशों से उदाहरण लिए जा सकते हैं। वही देश विकसित हैं जहां साक्षरता और शिक्षा का व्यापक प्रसार है। जहां की जनता साक्षरता और शिक्षा से सम्पन्न है। दक्षिण ऐशियाई देशों में बहुसंख्यक जनता निरक्षर है इसलिए दीन–हीन और दुर्दशाग्रस्त है। सारे संसाधनों के होते हुए भी विकास की प्रतिगामी दक्षिण एशियाई बहुसंख्यक जनता अपने पिछड़ेपन के लिए स्वयं जिम्मेदार है। भारत के विकास की गति भी निरक्षरता के कारण तेज नहीं हो पा रही है।

अपने ही देश में राज्यवार विकास की गति अलग–अलग है। ऐसा साक्षरता का प्रतिशत अलग–अलग होने के कारण है। केरल पूर्ण साक्षर राज्य है जहां 90 प्रतिशत साक्षरता है। वहां की जनता विकास और उपलब्धिओं के नए–नए मानदण्ड स्थापित कर रही है। दूसरी तरफ बिहार राज्य है जिसकी साक्षरता देश में न्यूनतम 34.5 प्रतिशत है। बिहार देश का एकमात्र ऐसा राज्य है जिसके उपलब्ध संसाधन (खनिज और मानव) पूरे एशिया को स्वर्ग बना सकते हैं। ऐसे राज्य की 85 प्रतिशत जनता अमानवीय और नारकीय परिस्थितियों में रहती हुई विश्व की सारी उपलब्धियों को नकार रही है। स्पष्ट है वहां शिक्षा और साक्षरता के अकाल के कारण ही ऐसा है। इस प्रकार साक्षरता और शिक्षा के विकास से सहसंबंध को समझते हुए अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग तर्कों से समझा जा सकता है।

साक्षरता और शिक्षा

महात्मा गांधी साक्षरता और शिक्षा के भेद पर एक तर्कसंगत दृष्टिकोण अपनाते हुए अपनी एक पुस्तक में लिखते हैं कि शिक्षा महत्वपूर्ण है और साक्षरता गौण। साक्षरता अपने में शिक्षा नहीं है। बिना साक्षरता के भी जन–मानस को बुद्धिमान और ज्ञानवान देखा गया है। परन्तु यह अपनी तरह का एकांगी सच है, क्योंकि निरक्षर व्यक्ति सुनी हुई और कण्ठस्थ की हुई बातों को ज्ञान के रूप में धारण करता है और समय–समय पर विवेकानुसार उपयोग करता है। सुनी जाने वाली बात अफवाह भी हो सकती है परन्तु ग्रन्थों से तर्कसंगत ढंग से पढ़ा जाने वाला ज्ञान प्रामाणिक होता है। शिक्षा की कोई भी वैज्ञानिक शुरुआत साक्षरता के बिना असंभव है। साक्षरता शिक्षा की प्राथमिकी है, एक मूल आधार है। साक्षरता शिक्षा रूपी महल की नींव की ईंट है।

व्यापक साक्षरता से ही शिक्षा का विकास सम्भव है। शिक्षा के विकास के लिए साक्षरता प्रतिशत सतत बढ़ाते रहना आवश्यक है अन्यथा सारी योजनाएं धरी की धरी रह जाती हैं। जिन देशों और राज्यों में साक्षरता का प्रतिशत अधिक होता है वहां शिक्षा का प्रतिशत भी उसी अनुपात में बेहतर होता है। साथ ही शिक्षा का स्तर वहीं गुणवत्तापूर्ण है, जहां साक्षरता का प्रतिशत बेहतर है। व्यक्ति यदि साक्षर है तो वह स्वयं अपनी ज्ञान–पिपासा को तृप्त करने के साथ–साथ स्वाध्याय करते हुए अपने ज्ञान का सतत विस्तार कर सकता है, उसका विकास कर सकता है। इस तरह साक्षरता शिक्षा का अति महत्वपूर्ण बिंदु है।

एक निरक्षर व्यक्ति के लिए विश्व ज्ञान की सारी उपलब्धियां निरर्थक हैं। वह आंखों के रहते हुए भी दृष्टिहीन है। उसके लिए ज्ञान–विज्ञान की बड़ी–बड़ी बातों का कोई अर्थ नहीं है। निरक्षर व्यक्ति इस तरह अज्ञानता के अंधकूप में पड़ा अपनी माननीय बुद्धि से अनजान, मूर्खतापूर्ण जीवन व्यतीत करने को विवश है इसलिए ऐसी जनता का दुख–दर्द दूर करने के लिए साक्षरता और शिक्षा दोनों अनिवार्य हैं।

साक्षरता और जागरूकता का विकास

मानव अनादि काल से एक जागरूक प्राणी रहा है, यह जागरूकता ही मानव के चतुर्दिक विकास का सबसे अहम बिंदु है। वह अपने आस–पास की प्रकृति के रहस्यों को जानने की जागरूकता में बराबर कुछ न कुछ उपलब्धियों को अर्जित करता रहा है। परन्तु जब यह जागरूकता समाप्त कर मनुष्य ने अपनी असमर्थता का परिचय दिया तो अन्धविश्वासों और कर्मकाण्डों ने उसे जकड़ लिया, वे भूत, प्रेत, पिशाच, मंत्र, तंत्र, यज्ञ हवन आदि अंधविश्वासपूर्ण कर्मों में अपने जीवन की जागरूकता की तिलांजलि देकर दीन–हीन हो गया, आज भी वह विकृत्ति परम्परागत रूप से समाज के विशाल जनमानस के बीच विद्यमान है। वर्तमान में समाज के प्रत्येक वर्ग में समान रूप से जागरूकता नहीं है।

एक निरक्षर के लिए दुनिया की सारी उपलब्धियां कोई मायने नहीं रखतीं। इन बातों को दृष्टि में रखकर समझा जा सकता है कि व्यक्ति निरक्षर इसलिए है कि वह जागरूक नहीं है, एक व्यक्ति जागरूक इसलिए नहीं है, क्योंकि वह निरक्षर है। साक्षरता और जागरूकता में यही संबंध है। जो जागरूक होगा वह सारी परेशानियों के बावजूद स्वयं को साक्षर बना लेगा, साथ ही जो व्यक्ति साक्षर है वह हर स्थिति में अपनी जागरूकता का प्रयोग करते हुए बेहतर भविष्य बनाने का प्रयास करता रहेगा। इस तरह साक्षरता और जागरूकता अपने व्यापक अर्थों में एक सिक्के के दो पहलू हैं। जो व्यक्ति साक्षर होगा वह समाचार पत्र देखते ही लपक पड़ेगा, देश दुनिया और समाज में क्या–क्या परिवर्तन हो रहा है वह यह जानने का प्रयास करेगा। वहीं एक निरक्षर समाचार पत्र की तरफ नजरें ही नहीं उठाएगा और आगे बढ़ जाएगा। एक साक्षर व्यक्ति कम से कम संसाधनों से अपना जीवन सुखी बना सकता है। वह अपने उपलब्ध संसाधनों का सही और वैज्ञानिक ढंग से उपयोग करके अपने जीवन की बेहतर गुणवत्ता सुनिश्चित करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि साक्षरता व्यक्ति की जागरूकता को तीव्र करके उसे ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रेरित करती है। साक्षर व्यक्ति जागरूकता के साथ–साथ अपने आस–पास का जन–जीवन बेहतर ढ़ंग से प्रभावित करता है।

साक्षरता और जनसंख्या नियन्त्रण

आजादी के पचास वर्षों के उपरान्त आज देश की जनसंख्या तिगुनी हो गई है, राष्ट्र के समक्ष यह बड़ी भारी चुनौती है। जनसंख्या वृद्धि की अतिशयता के कारण सरकार द्वारा संचालित योजनाओं का लक्ष्य कभी पूरा नहीं हो पाया, न ऐसा हो सकता है। देश के लिए जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ उत्पादन वृद्धि करके जनता को जीवन की मूलभूत सुविधाओं को मुहैया करा पाना वर्तमान स्थिति में बहुत ही कठिन होता जा रहा है। जनसंख्या वृद्धि और उत्पादन वृद्धि के भिन्न–भिन्न चरित्र के कारण ही ऐसा है। कई प्रख्यात अर्थशास्त्री अपनी स्थापनाओं में इसको परिभाषित करते रहे हैं, इनमें माल्थस प्रमुख हैं। वे लिखते हैं कि "जनसंख्या वृद्धि की गति, प्रकृति गुणात्मक होती है जबकि उत्पादन की प्रकृति धनात्मक।" इसलिए जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ उत्पादन में वृद्धि करते रहना असम्भव है। इस विचार को सार्थक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है देश के पास जो संसाधन 1947 में उपलब्ध थे, वे आज भी ज्यों के त्यों हैं परन्तु जनसंख्या तीन गुनी बढ़ चुकी है। कृषि क्षेत्रों में उत्पादन वृद्धि के लिए बेहतर प्रविधियां इस्तेमाल करके प्रति हेक्टेयर फसलों की जो पैदावार बढ़ाते जा रहे हैं वह अंकगणितीय तरीके से ही बढ़ाई जा सकी है, परन्तु जनसंख्या वृद्धि दो पीढ़ियों में ही तीन गुनी हो चुकी है अतः फसलों की पैदावार जनसंख्या वृद्धि के स्तर पर कदापि नहीं बढ़ाई जा सकती।

देश की बंजर और वनाच्छादित भूमि को कृषि योग्य भूमि में परिवर्तित करने के बाद भी समस्या ज्यों की त्यों है, इसलिए आज राष्ट्र की पहली प्राथमिकता जनसंख्या–वृद्धि पर नियन्त्रण रखना है। जनसंख्या–वृद्धि का मूल कारण है ऊंची जन्म दर। अपने देश में वर्तमान जन्म दर विश्व के बहुत से विकसित देशों की तुलना में काफी अधिक है। अपने देश में यह दर प्रति हजार जनसंख्या के पीछे 31 प्रतिवर्ष है जबकि आस्ट्रेलिया में इसी स्थिति में 15, जर्मनी में 10, ब्रिटेन में 14 और अमरीका में 16 प्रतिवर्ष है।

इस बारे में अपनी पुस्तक "भारतीय अर्थशास्त्र" में डा. सी. मामोटिया और डा. जैन लिखते हैं कि "जनसंख्या वृद्धि के मूल कारणों में देश की अधिकतम जनसंख्या की निरक्षरता, अशिक्षा और उनका निम्न जीवन स्तर है। अशिक्षित होने के कारण लोग रूढ़िवादी हैं, और परिवार कल्याण के महत्व को नहीं जानते हैं, साथ ही बच्चों की वृद्धि उनके जीवन स्तर पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डालती है क्योंकि उनका जीवन स्तर पहले से निम्न है। इसके विपरीत उनकी यह धारणा कि बच्चा सात–आठ वर्ष का होने पर कमाने में सहायक होगा, जनसंख्या वृद्धि में योगदान देती है।" ये पक्तियां निरक्षरता का जनसंख्या–वृद्धि पर प्रभाव दर्शाती हैं और जनसंख्या नियन्त्रण के लिए साक्षरता की वकालत करती हैं।

इसका उदाहरण उत्तर प्रदेश और केरल को लेकर दिया जा सकता है–उत्तर प्रदेश में स्त्री साक्षरता दर 26.2 प्रतिशत है, तो इसी दर के मुकाबले शिशु मृत्यु दर 150 शिशु प्रति हजार है। जबकि इसके उल्टे केरल में स्त्री–साक्षरता दर 70.8 प्रतिशत है, तो शिशु मृत्युदर 150 शिशु प्रति हजार के मुकाबले काफी कम मात्र 37 प्रति हजार है।

यह बात नहीं है कि जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ सरकार के लाख प्रयासों के बावजूद साक्षरता नहीं बढ़ी है, परन्तु बढ़ी हुई साक्षरता दर जनसंख्या वृद्धि की दर के मुकाबले बेमानी है, और यह तब और बेमानी है, जब सरकार अपना खजाना निरक्षरता की समूल समाप्ति के लिए खोल कर बैठी हो। यदि जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ साक्षरता दर भी बढ़ाई जा सकती तो सरकारी योजनाएं अवश्य ही निरक्षरता उन्मूलन के लिए अपेक्षा के अनुरूप सफल हो सकती थीं, परन्तु आंकड़े इसके विपरीत असफलता ही प्रदर्शित करते हैं।

1951 में जहां देश की जनसंख्या 35 करोड़ के लगभग थी वहीं साक्षरता की दर 16.7 प्रतिशत थी जबकि तब शिक्षा के क्षेत्र में निरक्षरता के उन्मूलन में सरकार की कोई अर्थपूर्ण भूमिका नहीं थी। 1971 की बढ़ी हुई डेढ़ गुनी से अधिक 54.8 करोड़ जनसंख्या के पीछे साक्षरता दर 24 प्रतिशत हुई (यह तब हुई जब सरकार निरक्षता उन्मूलन और शिक्षा के प्रसार के लिए प्राणपण से लगी हुई थी)। 1981 में बढ़ी 68.3 करोड़ जनसंख्या के पीछे साक्षरता दर 36.2 प्रतिशत हुई। 1991 में 84.6 करोड़ जनसंख्या के पीछे साक्षरों का प्रतिशत 52.2 प्रतिशत हो गया। ये आंकड़े यह जरूर प्रदर्शित करते हैं कि जनसंख्या के साथ–साथ साक्षरता में भी वृद्धि हुई पर यदि जनसंख्या वृद्धि की दर न्यूनतम होती तो आज निरक्षरता उन्मूलन का सरकारी प्रयास अवश्य ही सफल हो जाता। जाहिर है सरकार जितना चाहती थी जनसंख्या वृद्धि से उबरकर साक्षरता प्रतिशत तेजी से बढ़ा सकती थी, वह उसके सारे प्रयासों के बावजूद असंभव हो गया। सरकार ने सन् 2005 तक पूर्ण साक्षरता का लक्ष्य रखा है परन्तु वर्तमान स्थिति को देखते हुए यह एक टेढ़ी खीर साबित होगी क्योंकि एक अनुमान के मुताबिक 2005 तक देश की जनसंख्या 1 अरब 44 करोड़ 20 लाख तक हो जाएगी, और सरकारी योजनाओं की रीढ़ खोखली कर देगी। फिर भी सरकार ने साक्षरता और जनसंख्या शिक्षा को एक राष्ट्रीय नेटवर्क से जोड़कर उत्साहपूर्ण और महत्वाकांक्षी योजना को जारी रखा है जिसमें एक व्यापक समन्वित दृष्टि से तथ्यों को स्पष्ट किया गया है जो निम्न हैं :

"1976 की जनसंख्या शिक्षा की नीति में इस बात पर बल दिया गया है कि शिक्षा ही जनसंख्या को कम करने में सबसे अधिक सहायक हो सकती है। इस नीति के मुख्य बिंदु बालिकाओं की शिक्षा और शिक्षा के सभी स्तरों पर जनसंख्या शिक्षा का समायोजन है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य आदमी में अपनी समस्याओं के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना है ताकि वह उन समस्याओं से उबरने का निदान कर सके। चेतना द्वारा प्राप्त ज्ञान को वह अपनी गतिविधियों द्वारा प्रकट करता है। उसकी जीवनधारा उसी प्रकार बन जाती है। वह अपने जीवन का नियोजन उसी आधार पर करने लगता है।"

साक्षरता, स्वास्थ्य और शिशु कल्याण

साक्षरता का स्वास्थ्य से सीधा संबंध होता है। निरक्षर और अशिक्षित व्यक्ति स्वास्थ्य को किस प्रकार से सही रखा जाए इस बात पर कम ही ध्यान देते हैं। वे सफाई और खान–पान को बड़ी लापरवाही से लेते हैं। फलतः कहां, कब और कैसे किस–किस रोगों से उसका परिवार ग्रस्त हो जाए कहा नहीं जा सकता। निरक्षर और अज्ञानी व्यक्ति एक तरफ अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक नहीं रहता, वहीं वह दूसरी तरफ अपने परिवार की स्वास्थ्यपूर्ण स्थितियों की अपेक्षा और अवहेलना करता है,। फलतः उसकी निर्धनता, निरक्षरता और लापरवाही सब मिलकर उसके परिवार के सदस्यों को कुपोषण के साथ–साथ भयानक बीमारियों से ग्रस्त कर देते हैं और वह चिकित्सा के प्रति भी लापरवाही बरतता हुआ, अपने परिवार का जीवन संकटग्रस्त कर देता है।

साक्षरता एवं शिक्षा से सम्पन्न व्यक्ति के बारे में यह सुनिश्चित कहा जा सकता है कि ऐसा व्यक्ति अपनी योग्यता और शक्ति का अधिक से अधिक सदुपयोग करेगा। ऐसा करने में वह बुद्धि और तकनीक का प्रयोग सही जगह और सही समय पर निश्चित करेगा।

अधिकतर देखा गया है कि देश में कुल जितनी मौतें होती हैं, उनमें से 50 प्रतिशत मौतें पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की होती हैं। पैदा होने वाले एक हजार बच्चों में से लगभग 10 प्रतिशत अर्थात 100 बच्चे एक वर्ष की आयु पूरी नहीं कर पाते हैं। जो जीवित बच जाते हैं उनमें से भी कुछ बच्चे शारीरिक, और मानसिक रूप से पूरी तरह विकसित नहीं हो पाते। इन बच्चों की मृत्यु या उनके पूरी तरह से विकसित न होने के कारण स्वरूप छह प्रमुख बीमारियां हैं। ये बीमारियां हैं–टिटनेस, डिप्थीरिया (गलाघोंटू), काली खांसी,, खसरा, टी. बी. (छय रोग) और पोलियो। इन रोगों से बड़ी आसानी से बच्चों को बचाया जा सकता है, यदि बच्चों को समय से इन बीमारियों के टीके लगवा दिए जाएं या दवा की खुराक दे दी जाए। इससे शिशु–मृत्युदर कम हो जाएगी। इन रोगों के अलावा बच्चों को एक बीमारी कम से कम एक बार जरूर होती है, वह है डायरिया अर्थात दस्त। एक सर्वेक्षण के मुताबिक नौ वर्ष के भीतर मरने वाले बच्चों में 50 प्रतिशत बच्चे केवल डायरिया से ही मर जाते हैं। यह बीमारी जितनी ही खतरनाक है, उसका इलाज भी उतना ही सरल है। बस जरूरत है समझदारी और जागरूकता की। एक साक्षर और शिक्षित व्यक्ति अवश्य ही ऐसी समझदारी और जागरूकता प्रदर्शित करता है जिससे उसके सम्पर्क में आने वाले परिवार, पड़ोसी और रिश्तेदारों के बच्चों के जीवन का संकट बहुत कम किया जा सकता है।

शिशु मृत्यु दर का सीधा संबंध स्त्रियों की साक्षरता और शिक्षा से भी है, जहां–जहां स्त्री साक्षरता अधिक है, उन राज्यों में यह पाया गया है कि वहां की शिशु मृत्यु दर काफी कम है। इसका उदाहरण उत्तर प्रदेश और केरल को लेकर दिया जा सकता है–उत्तर प्रदेश में स्त्री साक्षरता दर 26.2 प्रतिशत है, तो इसी दर के मुकाबले शिशु मृत्यु दर 150 शिशु प्रति हजार है। जबकि इसके उल्टे केरल में स्त्री–साक्षरता दर 70.8 प्रतिशत है, तो शिशु मृत्युदर 150 शिशु प्रति हजार के मुकाबले काफी कम मात्र 37 प्रति हजार है।

केरल में स्त्री साक्षरता का प्रतिशत अधिक है तो वहां शिशु मृत्यु–दर सरकार द्वारा वर्ष 2000 के लिए निर्धारित लक्ष्य 60 से भी काफी कम है। यह शंका उठ सकती है कि शायद केरल में स्वास्थ्य सुविधाएं अधिक होंगी। शायद वहां की प्रति व्यक्ति आय अधिक होगी जिससे वहां के लोग बच्चों के पोषण व चिकित्सा सुविधाओं पर अधिक व्यय करते होंगे। परन्तु वास्तव में ये दोनों बाते ही सही नहीं हैं। न तो केरल में चिकित्सा सुविधाएं ही अधिक हैं न ही प्रति व्यक्ति आय। प्रति व्यक्ति आय पूरे देश में पंजाब राज्य की सबसे अधिक है। एक सर्वेक्षण के अनुसार अशिक्षित मां के बच्चों की मृत्यु दर 81 प्रति हजार है, प्राइमरी शिक्षित

मां के बच्चों की मृत्युदर काफी कम 59 प्रति हजार है। वहीं–प्राइमरी से ऊपर शिक्षित मां के बच्चों की मृत्युदर उपरोक्त से काफी कम 49 प्रति हजार है।

उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट है कि व्यक्ति की साक्षरता उसके परिवार के स्वास्थ्य और कल्याण हेतु बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अक्सर ऐसा होता है कि बहुसंख्यक निरक्षर अशिक्षित जनता परिवार में किसी भी सदस्य की स्वास्थ्य संबंधी तकलीफों के इलाज के लिए जादू, टोने–टोटके आदि का सहारा लेते हैं न कि बीमारी का इलाज (वैज्ञानिक ढंग से) कराने के लिए प्रस्तुत होने के। इन अन्धविश्वासों के मूल में जनता की अशिक्षा और निरक्षरता ही है। जो व्यक्ति साक्षर है, वह परिवार के किसी सदस्य के रोगग्रस्त होने पर या स्वास्थ्य संबंधी तकलीफ पैदा होने पर वैज्ञानिक एवं सही इलाज के लिए चिकित्सकों का परामर्श लेने में कोई कोताही नहीं बरतता, भले ही उसे पैसों की कितनी ही तंगी क्यों न हो। एक साक्षर व्यक्ति स्वास्थ्य सेवा संबंधी उपलब्ध सभी संसाधनों का बेहतर उपयोग करते हुए स्वास्थ्य संबंधी विकास को सुनिश्चित करते हुए विकास को गति देता है।

साक्षरता एवं कृषि का विकास

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इस देश की 70 प्रतिशत जनता कृषि पर ही अपनी जीविका का निर्वाह करती है। आधुनिक युग में कृषि के क्षेत्र में नए–नए अनुसंधानों एवं आविष्कारों से नए–नए तरीकों और प्रविधियों की खोज से बहुत ही क्रान्तिकारी बदलाव आया है। यह बदलाव देर से ही सही, सीमित जगहों पर ही सही, अपने देश में भी आ गया है। जुताई करने के लिए ट्रैक्टर, कल्टीवेटर, आदि के अलावा छोटे–छोटे बढ़िया हलों का भी आविष्कार कृषि के लिए वरदान सिद्ध हुआ है। अच्छी उपज देने वाले नए–नए संस्कारित बीजों के साथ फसलों में बीमारियों की रोकथाम के लिए तरह–तरह की दवाओं की उपलब्धता से अच्छी फसल की पैदावार बड़े पैमाने पर ली जा सकती है। अनाज भंडारण की नई–नई तकनीकों ने कृषकों को साहूकारों के चंगुल से मुक्त करके उन्हें खुशहाल बनाया है। हरित क्रांति अपने देश में सफल रही है, परन्तु उस स्तर पर नहीं जितनी कि आशा की गई थी। हरित क्रांति से देश की जनता आज अन्न संकट से पूर्णतया मुक्त है परन्तु फिर भी लक्ष्य अधूरे हैं। कारण–विशाल बहुसंख्यक जनता की निरक्षता अशिक्षा और कृषि क्षेत्र में विकास के प्रति अनभिज्ञता और साथ ही उनके पूर्वाग्रह भी।

आज कृषि में नई तकनीक के सफलीभूत होने पर भी देश के 50 प्रतिशत किसान अपने

साक्षर और शिक्षित श्रमिक, चाहे वह कृषि क्षेत्र का हो या औद्योगिक क्षेत्र का, जब अपनी क्षमता का अधिक से अधिक उपयोग करने के बारे में सोचेगा तो निश्चय ही उसकी वर्तमान क्षमता बढ़ाने के तरीके मिल जाएंगे।

घिसे–पिटे, पुराने परम्परागत–यन्त्रों और प्रविधियों से कृषि कार्य करते हुए अन्न उत्पादन करते हैं। परिणामस्वरूप वे आज उतना उत्पादन भी नहीं कर पा रहे हैं कि अपने परिवार की खाद्य जरूरतों को पूरा कर सकें। शिक्षा, स्वास्थ्य और अच्छे रहन–सहन की सुविधाएं तो उनसे सैकड़ों मील दूर हैं। यदि ये बहुसंख्यक कृषक जिनके पास भूमि के छोटे–छोटे अपर्याप्त टुकड़े हैं, साक्षर और शिक्षित हो जाएं तो वे जान सकेंगे कि उसी भूमि पर वह क्या पैदा करें, किस तरह पैदा करें कि उनका जीवन स्तर सुधर जाए। साक्षर हो जाने पर देश के सभी किसान अपने उपलब्ध संसाधनों और अपने कठिन श्रम का सही–सही सदुपयोग करते हुए अपनी स्थिति बेहतर बनाते हुए राज्य और राष्ट्र को समृद्ध बना सकेगें और राष्ट्र का विकास सुनिश्चित कर सकेगें। देश में ही यह देखा जा सकता है कि जिस–जिस राज्य के कृषक अपेक्षाकृत अधिक शिक्षित हैं वे अच्छा उत्पादन करते हैं, मंहगा उत्पादन करते हैं और उसकी सही ढ़ंग से उचित दाम पर बिक्री करके अपने श्रम का भरपूर लाभ उठाते हैं। वहीं कम शिक्षा वाले राज्यों में कृषिकर्म कृषकों के लिए एक मजबूरी है, बोझ है, एक शाप है, दुःस्वप्न है। इजराइल का कृषि–कर्म पूरे विश्व के लिए मिसाल है। इसलिए नहीं कि वहां की भूमि बहुत अच्छी है या सरकार बहुत अधिक धन खर्च करती है, या लोगों की आय अधिक है। इजराइल कृषि क्षेत्र के लिए बंजर क्षेत्रों से पटा है, इंच–इंच पानी से तरसता था..... परन्तु आज वहां कृषि की उन्नत तकनीकों का प्रयोग वहां के किसान इस तरह करते हैं कि वे सब कुछ बड़े ही अच्छे पैमाने पर उगाने में सफल हैं। ऐसा वहां कृषकों की साक्षरता और बेहतर शिक्षा के कारण है। अपने ही देश में पजांब, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र आदि राज्यों के किसान अपनी छोटी–बड़ी जमीनों पर वैज्ञानिक ढंग से कृषि करते हुए लगातार तेजी से विकास कर रहे हैं। ऐसा उनकी साक्षरता दर अधिक होने के कारण ही संभव हुआ है। इसलिए शेष राज्यों के बहुसंख्यक किसानों की दशा को बेहतर स्तर पर लाने के लिए उन्हें साक्षरता और शिक्षा के दायरे में लाया जाना बहुत ही आवश्यक है। इसी तरह निरक्षरता और शिक्षा के कारण पशु–पालन से देश के किसानों को (तथा देश को) जो आय सम्भव है, उसका बीसवां भाग भी नहीं हो पा रहा है। यह सर्वविदित तथ्य है कि पशुओं के मामले में अपना देश विश्व का दूसरा बड़ा देश है परन्तु दुग्ध उत्पादन की रेटिंग में कहीं नही है। हां चमड़ा उत्पादन भले ही ठीक माना जाए फिर भी यह उत्पादन इतना स्तरीय नहीं बन पा रहा है कि देश को कोई विशेष लाभ हो। देश में श्वेतक्रांति की असफलता का सबसे बड़ा कारण निरक्षरता ही है। हालांकि गुजरात और राजस्थान में श्वेतक्रांति सफल रही है फिर भी पूरे देश के स्तर पर स्थिति अच्छी नहीं है। पशुपालन से पर्याप्त दूध, मांस, ऊन और चमड़ा आदि प्राप्त करने के लिए पशुपालकों में वैज्ञानिक दृष्टि का होना बहुत ही आवश्यक है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए किसानों और पशुपालकों को साक्षर और शिक्षित किया जाना बहुत ही आवश्यक है। जब ऐसा होगा तभी कृषि और पशुपालन के विकास को कोई तीव्र आयाम दिया जा सकेगा।

साक्षरता से श्रमिक–गुणवत्ता और औद्योगिक विकास

साक्षरता एवं शिक्षा से सम्पन्न व्यक्ति के

बारे में यह सुनिश्चित कहा जा सकता है कि ऐसा व्यक्ति अपनी योग्यता और शक्ति का अधिक से अधिक सदुपयोग करेगा। ऐसा करने में वह बुद्धि और तकनीक का प्रयोग सही जगह और सही समय पर निश्चित करेगा। यह मान्य तथ्य है कि संसार के सभी कठिन कार्यों को बुद्धि और योग्यता के द्वारा बड़े ही सुविधाजनक ढंग से सम्पादित किया जा सकता है। ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के दिनों में इसका शानदार उदाहरण देखा जा सकता है। परम्परागत कृषि से अपनी सम्पूर्ण क्षमता का उपयोग करके इंग्लैण्ड के कृषक वर्ग ने जब उत्पादन का उच्चतम लक्ष्य पा लिया, तब उनके सामने यह समस्या आई कि इससे अधिक उत्पादन अपने परम्परागत ढंग से तो किया ही नहीं जा सकता तो वे अब उत्पादन की वृद्धि करें तो कैसे करें। फलतः वहां के कृषकों की साक्षरता, शिक्षा, बुद्धि और ईमानदार प्रयत्नों ने उत्पादन बढ़ाने के लिए नए–नए आविष्कारों का विचार दिया। फलतः जुताई के आधुनिक तरीकों, उन्नत बीजों (अधिक उत्पादन देने वाले) का प्रयोग, कीड़ों से फसलों को बचाने हेतु कीटनाशकों का उपयोग तथा फसलों की मड़ाई करके अनाज निकालने की नई प्रविधियों का विकास करके साथ ही अन्न भंडारण की नई–नई तकनीकों से उन कृषकों ने अपने कृषि उत्पादन को बीस गुना बढ़ा दिया.....इसी क्रम से मशीनीकरण का विकास होते होते औद्योगिक क्रांति ने जोर पकड़ लिया।

उपर्युक्त उदाहरण में श्रमिक गुणवत्ता और औद्योगिक विकास के लिए साक्षरता और शिक्षा की भूमिका को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। साक्षर और शिक्षित श्रमिक चाहे वह कृषि क्षेत्र का हो या औद्योगिक क्षेत्र का, जब वह अपनी क्षमता का अधिक से अधिक उपयोग करने के बारे में सोचेगा तो निश्चय ही उसकी वर्तमान क्षमता बढ़ाने के तरीके मिल जाएगें। ये तरीके, ये प्रविधियां ही एक श्रमिक को दस–दस श्रमिकों के कार्य की गुणवत्ता प्रदान कर देती हैं। इससे काम करने की प्रविधि के अलावा तकनीकी समझ, सम्बद्ध ज्ञान और अध्ययन, सही समय पर सही ढंग से क्रियाशीलता तथा हल्के तेज हथियारों का प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। एक साक्षर और शिक्षित श्रमिक इन सभी बिंदुओं पर अपनी जागरूकता के साथ खरा उतर सकता है बशर्ते कि उसके प्रयत्नों में ईमानदारी हो। ऐसा श्रमिक न केवल अपने लिए विकास और पदोन्नति के अवसर पैदा कर सकता है, बल्कि वह औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हुए राष्ट्र के विकास को गति दे सकता है। आज औद्योगिक जगत के श्रमिक वर्गों में बड़ी अफरातफरी है। तमाम तरह के मजदूर नेता निरक्षर और नासमझ मजदूरों को लुभावने सपने दिखाकर न केवल उनकी क्षमता को घटाते हैं, बल्कि उन्हें हड़तालों आदि में हिस्सा दिलवाकर पथभ्रष्ट कर देते हैं जिसका असर यह होता है कि उनके लिए अपनी जीविका चलाना मुश्किल हो जाता है। मिलें और फैक्ट्रियां हड़ताल होने पर बंद रहती हैं जिससे उत्पादन पर प्रतिकूल असर पड़ता है। मिलें बरबाद होने लगती हैं फलतः एक दिन उनमें तालाबंदी हो जाती है और श्रमिक हितों का सबसे बड़ा खतरा उनके सामने खड़ा हो जाता है। जागरूक, साक्षर और शिक्षित मजदूर अपने मस्तिष्क का उपयोग करने के कारण मजदूर नेताओं के ऐसे बहकावे में नहीं आ सकता, जिससे भविष्य में उसकी जीविका को ही खतरा पैदा हो जाए। ऐसा मजदूर साक्षर और शिक्षित होने के कारण नेताओं के दिखाए गए लुभावने सपनों के पीछे का क्रूर खेल समझ जाएगा और अपने को, अपनी गुणवत्ता को, और अपनी क्षमता को कदापि खतरे में नहीं डालेगा। वह साक्षर होने के नाते यह जानेगा कि किस प्रकार उसके श्रमिक हित वास्तव में सुरक्षित हो सकते हैं।

इन सारी स्थितियों के अलावा कम्पनियों में मजदूरों के सामने ऐसे अवसर अक्सर आते हैं, जब उन्हे नई तकनीक का प्रशिक्षण देने के लिए चुना–जाता है। ऐसी स्थिति में साक्षर और शिक्षित मजदूर अपनी इन्हीं योग्यताओं के बल पर विकास का बड़ा अवसर पा जाता है, वहीं दूसरी तरफ निरक्षर और अशिक्षित मजदूर पछतावे के साथ हाथ मलते रह जाते हैं। दस निरक्षर मजदूरों के बीच एक साक्षर मजदूर की भूमिका बड़े ही काम की हो जाती है, क्योंकि साक्षर और शिक्षित होने के कारण उसका दायित्व उन मजदूरों के प्रति जिम्मेदारी पूर्ण हो जाता है। ऐसा मजदूर स्वयं तो सामान्य बुराइयों से दूर रहेगा ही उन्हें भी (बाकियों को भी) सही रास्ते पर ले जाएगा। निरक्षर और अशिक्षितों के हितों की सुरक्षा भी एक साक्षर शिक्षित और बुद्धिमान मजदूर ही कर सकता है। इस प्रकार साक्षरता और शिक्षा बहुत ही विस्तृत फलक पर अपना प्रभाव–क्षेत्र बनाती है, जिसमें श्रमिकों के कार्यों में गुणवत्ता की वृद्धि के साथ–साथ उनके हितों की भी सुरक्षा सुनिश्चित होती है और श्रमिकों को स्वयं के विकास का अवसर तो मिलता ही है, साथ ही उनका परिवार व्यापक समाज और औद्योगिक उत्पादन भी गुणात्मक वृद्धि/विकास की गति–प्राप्त करता है।

साक्षरता और जनजीवन के जीवन–स्तर में सुधार

साक्षरता और शिक्षा का समाज के सभी लोगों के जीवन स्तर में सुधार से बड़ा महत्वपूर्ण रिश्ता है। निरक्षर और अशिक्षितों की आय, उसकी उपयोगिता तथा उसके जीवन स्तर में कोई तालमेल नहीं होता है। ऐसा व्यक्ति चाहे जितना धन कमा ले, परन्तु फिर भी नरक जैसी अमानवीय स्थिति में परिवार सहित पड़ा हुआ पूरे परिवार का भविष्य अन्धकारमय कर देता है।

निरक्षरता और अशिक्षा का आय से प्रतिकूल संबंध है। ऐसा व्यक्ति जो निरक्षर और अशिक्षित है, सामाजिक बुराइयों से सबसे अधिक प्रभावित होता है। अक्सर ऐसा व्यक्ति अपनी पूरी आय से परिवार की बेहतरी सुनिश्चित करने की जगह अविवेक के साथ अपनी सारी आय कमोबेश शराब और जुए में खर्च कर जाता है। चूंकि निरक्षर व्यक्ति अपनी आय को बढ़ाने और उपलब्ध आय के सही वितरण के बारे में कोई व्यवस्था नहीं करता, फलस्वरूप वह अपने परिवार सहित भूख, अशिक्षा–निरक्षरता, कुपोषण, गन्दगी, बीमारी एवं लड़ाई–झगड़ों के तनावों के साथ दुखों के दलदल में फंसा तड़पता रहता है। वह अपने परिवार का सही पोषण तो नहीं कर पाता साथ ही स्वयं निरक्षर होने के कारण शिक्षा की उपयोगिता से अनजान रहकर अपने परिवार की शिक्षा की भी अवहेलना करता हुआ अपने बच्चों का भविष्य अंधकारमय कर देता है। निरक्षर और अशिक्षित व्यक्ति

केवल स्वयं ही परेशान रहता है, बल्कि अपनी पीढ़ी का जीवन स्तर भी अपनी तरह निश्चित कर देता है।

निरक्षर व्यक्ति अपनी जीविका और जीवन–स्तर के सुधार के प्रति अक्सर उदासीन पाए जाते हैं, उन्हें न तो अपनी आय को बढ़ाने की चिंता होती है, और न ही वे अपने जीवन स्तर में सुधार के प्रति कोई सोच रखते हैं। ऐसा नहीं है कि ऐसे व्यक्ति सपने नहीं देखते परन्तु ऐसे व्यक्ति केवल सपनों में ही मस्त रहने की कोशिश करते हैं, हालांकि उन्हें सपने में भी चैन नहीं मिल पाता। ऐसा भी अक्सर देखा जाता है, कि ऐसी स्थिति में निरक्षर और अशिक्षित व्यक्ति शराब, जुआ, भांग आदि की लत में पड़ जाते हैं और कालान्तर में अपना मानसिक संतुलन खोकर अपने परिवार का भविष्य अंधकारमय कर देते हैं। साक्षर और शिक्षित व्यक्ति अपनी आय का अपने और परिवार की बेहतरी के लिए खर्च करने में सदुपयोग करता है। चूंकि सबकी बेहतरी सुनिश्चित करने में उसे अपनी आय से संतुष्टि नहीं होती इसलिए वह आय बढ़ाने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है। वह अपने श्रम का, संसाधनों का तकनीकी ढ़ंग से उपयोग करता है और नए–नए उपाय खोजता है, परिणामस्वरूप उसकी आय सदैव वृद्धि की तरफ ही उन्मुख रहती है। एक साक्षर व्यक्ति व्यक्तिगत और सामाजिक बुराइयों के प्रति–संवेदनशील होता है इसलिए वह उसकी हकीकत से वाफिक होता है। फलतः वह सभी बुराइयों से स्वयं को दूर रखता है, और अपनी आय को बेकार जाने से रोकने के साथ–साथ परिवार के लोगों के लिए सौहार्द्रपूर्ण और आनन्दपूर्ण स्थिति बनाने में सफल होता है।

एक साक्षर और शिक्षित व्यक्ति लगातार अपने ज्ञान की वृद्धि के प्रति सजग रहता है, साथ ही अपने परिवार की शिक्षा की बेहतर स्थिति बनाए रखने की कोशिश करता है – फलतः उसके पूरे परिवार में सही संस्कार विकसित होते हैं और परिवार के साथ–साथ बच्चों का भविष्य अपने आप बेहतर बनता चला जाता है। इस प्रकार जीवन स्तर में सुधार आता है। साक्षर और शिक्षित व्यक्ति स्वास्थ्य के प्रति सदैव सचेत और संवेदनशील रहता है। वह साफ–सफाई के साथ–साथ अच्छे खान–पान का महत्व समझता है और सतत् प्रयास करता है कि उसके घर का वातावरण सदैव स्वास्थ्यप्रद रहे। वह अपने बच्चों को रोगों से बचाने के लिए अस्पतालों और चिकित्सकों का सहयोग लेता है, वह परिवार को रोगों से बचाने के लिए हर सम्भव प्रयास करता है। पूरे परिवार को भरपूर पोषण उपलब्ध कराने के लिए प्रयासरत रहता है, फलतः पूरे परिवार के स्वास्थ्यपूर्ण विकास का रास्ता प्रशस्त हो जाता है, जिससे उसके परिवार के जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार सुनिश्चित हो जाता है। साक्षर अभिभावक अपने बच्चों (युवा) के रोजगार के प्रति चिंता रखते हैं वे सुनिश्चित करते हैं कि उसके बच्चों को उनके स्वभाव और शिक्षा के अनुसार कार्य मिल सके। वे अपने बच्चों में आत्मविश्वास भरने में सतत् प्रयत्नशील रहते हैं, जिससे वे पूरे आत्मविश्वास और जिम्मेदारी से अपना कार्य करते हुए अपना सुनहरा भविष्य बना सकें। इस प्रकार साक्षरता और शिक्षा व्यक्तियों और समाज के जन–जीवन पर अनुकूल प्रभाव डालती है।

साक्षरता से ही विकास की गति में वृद्धि संभव

उपर्युक्त तथ्यों से स्थापित होता है कि साक्षरता का व्यक्ति से लेकर अखिल–विश्व के विकास का सीधा सुस्पष्ट और सुपरिभाषित सम्बन्ध है। जनता की दुर्दशा के मूल कारणों में निरक्षरता और अशिक्षा सबसे महत्वपूर्ण है। साक्षरता से एक तरफ जनता में शिक्षा का व्यापक प्रसार होता है, वहीं शिक्षा की गुणवत्ता के साथ–साथ सभी को समान रूप से लाभान्वित करते हुए उनके चतुर्दिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है। जनता में व्याप्त अन्धविश्वासों, कुरीतियों, रूढ़ियों और कुप्रवृत्तियों पर साक्षरता और शिक्षा द्वारा ही अंकुश लगाया जा सकता है। इन कुप्रवृत्तियों और बुराइयों के समाप्त होने पर साक्षर जनसमुदाय स्वयं को खुशहाल बनाते हुए, स्वयं का लगातार विकास करता हुआ क्रमशः समाज और राष्ट्र के विकास में योगदान देता है। साक्षरता के प्रसार से ही राष्ट्र के सामने खड़ी जनसंख्या वृद्धि की विकट समस्या का समाधान किया जा सकता है, साथ ही लोगों के मन में उनके स्वास्थ्य रहन–सहन, खानपान के प्रति सुसंस्कार भरे जा सकते हैं। यदि पूरे भारत की जनता साक्षर हो तो राष्ट्र के सामने अशिक्षा, महामारी, जनसंख्या वृद्धि, गरीबी, निर्धनता भूख एवं बेकारी जैसी समस्या हो ही नहीं सकती...यदि, ऐसी समस्याएं होती हैं भी तो उसे आसानी से निबटाया जा सकता था। जैसा कि एक कालम में लिखा गया है कि "मातृ–शिशु–कल्याण के लिए सरकार द्वारा किए हर संभव प्रयासों का जनता में व्यापक प्रचार–प्रसार और उपयोग नहीं हो पा रहा है। पूर्ण साक्षरता की स्थिति में यह काम बहुत ही आसान होता। ऐसी समस्या तब होती ही नहीं, और बच्चे को जन्म देने वाली ममतामयी मां और जन्म लेने वाले लाडलों के जीवन एवं स्वास्थ्य की बेहतर सुरक्षा हो सकती, जिससे विकास की गति में अवरोध बनी समस्याओं का निराकरण होते ही विकास की गति में वृद्धि होती। यदि जनता पूर्ण साक्षर होती तो कृषि उत्पादन, रख–रखाव तथा विपणन में गुणात्मक सुधार करके कृषि का विकास करते रहना देश के लिए बहुत ही सुविधाजनक होता। परन्तु साक्षरता की कमी के कारण कृषि विकास की गति बहुत धीमी है, इतनी धीमी कि न तो किसान ही खुशहाल है, और न ही देश। उद्योगों, कल कारखानों एवं अन्य जगहों पर हाड़तोड़ श्रम करते श्रमिकों की निरक्षरता के कारण ही उनके श्रम का यथोचित उपयोग नहीं हो पाता, जिससे न तो श्रमिक–कल्याण ही सुरक्षित हो पा रहा है और न ही औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि हो पा रही है। यदि सभी श्रमिक साक्षर और शिक्षित हों तो औद्योगिक जगत की स्थिति का कायाकल्प ही हो जाए। कुल मिलाकर साक्षरता ही वह कुंजी है जिससे देश की बहुसंख्यक दबी, कुचली, प्रताड़ित, भूखी, नंगी, गरीब जनता अपनी खुशहाली के खजाने का ताला खोल सकती है। जन जीवन के जीवनस्तर में सुधार के लिए समाज में सौहाद्र और प्रेम के लिए, उत्पादनों में वृद्धि और बेहतर व्यापार के विकास के लिए और राष्ट्र के विकास की गति सुनिश्चित करने के लिए साक्षरता ही वह केंद्रीय बिंदु है जहां से शुरुआत करके इन सारी उपलब्धियों को हासिल किया जा सकता है। ❑

हस्त शिल्प उद्योग को बचाना होगा

राजन मिश्रा*

आप कहां से आए हैं का उत्तर होता है – गांव से जबकि कहां जा रहे हैं का जवाब होता है – शहर। गांवों से शहरों की ओर पलायन जारी है और साथ, ही विदेशी संस्थाओं के पंजे हमारी ग्रामीण संस्कृति और हस्तशिल्प के विनाश के लिए तीव्रगति से अपना जाल फैला रहे हैं। गांव की आर्थिक व्यवस्था का आधार कृषि और हस्तशिल्प रहा है किन्तु उदारीकरण ने हस्तशिल्प पर प्रतिकूल प्रभाव डालना प्रारम्भ कर दिया है।

आज आवश्यकता है कि हस्तशिल्प उद्योग को बचाने की, जिसके लिए सर्वोत्तम रणनीति होगी – कलस्टर। कलस्टर, प्रायः ऐसी इकाई होती हैं जो असंगठित तथा छोटे समूहों में होती हैं तथा सभी इकाइयां अपनी व्यक्तिगत पहचान रखती हैं। कलस्टर का बाजार से सीधा सम्पर्क नहीं होता। इस रणनीति का प्रयोग ऐसे ग्रामीण परिवेश में होता है जहां हस्तशिल्प का उद्योग चल रहा हो। इस रणनीति का यदि ध्यान से अध्ययन किया जाए तो यह पता चलेगा कि यह रणनीति बहुत पुरानी है। लेकिन यह ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था का आधार है जिससे सबसे ज्यादा आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण ने प्रभावित किया है। इस कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था का स्वरूप बदलता जा रहा है। यह रणनीति परम्परागत शैली को जीवनदान देकर, भारतीय संस्कृति को जीवित रखे है।

भारत सरकार परम्परागत हस्तशिल्प के महत्व को ध्यान में रखते हुए इस उद्योग को छोटे उद्यम और इससे बड़े को लघु उद्यम कहती है। केन्द्र और राज्य सरकारों ने इन उद्यमों के महत्व को देखते हुए ग्रामीण लघु और छोटे उद्यमों के विकास के लिए विशेष योजनाएं बनाई हैं। इनकी वित्तीय सहायता और तकनीकी उन्नयन हेतु विशेष पैकेजों को लागू किया जा रहा है।

राष्ट्रीय लघु उद्योग संस्थान के अनुमान के अनुसार भारत में हस्तशिल्प से संबंधित करीब 2000 गौण क्लस्टर हैं, जिनका मुख्यत

* प्रवक्ता समाजशास्त्र, एस.आर.के. (पी.जी.) कालेज, फिरोजाबाद

हस्तशिल्प उद्योग में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका

आधार कौशल है। इनमें मुख्यतः श्रम का प्रयोग होता है। ये शत–प्रतिशत पर्यावरण के अनुकूल होते हैं। क्लस्टर पद्धति में प्रायः अपने समीप की आवश्यकता को देखते हुए उत्पादन होता था किन्तु वर्तमान में विपणन व्यवस्था में सुधार के कारण तैयार सामान बड़े शहरों में बिकता है, साथ ही साथ कुछ सामान निर्यात भी किया जाने लगा है।

भारतीय हस्तशिल्प का निर्यात जो 1985–86 में केवल 563 करोड़ रुपये था, अप्रैल से दिसम्बर 1999–2000 तक 4,699.49 करोड़ रुपये हो गया। हस्तशिल्प निर्यात संवर्धन परिषद (ई.पी.सी.एच.) ने इस वर्ष हस्तशिल्प निर्यात के लिए 6,900 करोड़ रुपये का लक्ष्य रखा है।

भारत में छोटे और लघु उद्योगों की स्थिति पर *संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संस्थान* ने एक अध्ययन करवाया। इस अध्ययन में संस्थान ने 917 क्लस्टरों के संमकों का संकलन कर विश्लेषण किया। ये सभी क्लस्टर भारत के 26 राज्यों में फैले थे। इनमें से 32 में विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन होता था।

वर्ष	हस्तशिल्प निर्यात में वृद्धि	प्रतिशत में कुल निर्यात में वृद्धि
1986–87	33.18	5.38
1989–90	26.18	4.52
1991–92	26.15	4.41
1992–93	39.21	4.69
1993–94	33.40	4.82
1994–95	33.68	4.04
1995–96	32.24	4.94
1996–97	33.11	5.01
1997–98	34.12	5.15

सर्वाधिक क्लस्टर वस्त्र निर्माण (हथकरघा–110) में पाए गए जबकि प्रदेशों में सर्वाधिक क्लस्टर (89) राजस्थान में पाए गए तथा उत्तर प्रदेश (85) दूसरे स्थान पर है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में क्लस्टरों की भूमिका को देखते हुए केन्द्र सरकार ने 1957 में खादी ग्रामोद्योग आयोग की स्थापना की, जो ग्रामीण क्लस्टरों को कच्चे माल, तकनीकी सहायता, वित्तीय सहायता, प्रशिक्षण, प्रमाणीकरण से लेकर विपणन में सहायता करता है। इसके बाद *ग्रामीण उद्यमी योजना* भी शुरू की गई।

केन्द्र सरकार द्वारा क्लस्टरों के लिए प्रयासों को देखकर राज्य सरकारें भी प्रयासरत हुईं। वित्तीय वर्ष 1999–2000 में ग्रामीण औद्योगीकरण के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम (एन. पी.आर.आई) की शुरुआत की गई जिसके अन्तर्गत हर वर्ष 1000 क्लस्टरों का गठन होगा।

ग्रामीण परिवेश में क्लस्टरों की मुख्य भूमिका के बावजूद क्लस्टरों की प्रगति को ग्रहण लगा है। ये क्लस्टर बहुत छोटी–छोटी इकाई होते हैं तथा ये असंगठित होते हैं। क्लस्टरों की प्रत्येक इकाई स्वतंत्र होती है तथा इनका सीधा सम्पर्क बाजार से नहीं होता है। क्लस्टरों में लगे ग्रामीण लोग अत्यधिक श्रम करते हैं। यही कारण है कि आसान उत्पादन प्रक्रिया के साथ चीजें काफी अच्छी बनती हैं तथा उत्पादन भी अधिक होता है किन्तु उत्पादकता कम रहती है। इसका एक कारण सूचनाओं के आदान–प्रदान में कमी होना बताया जाता है। इस उत्पादन की प्रक्रिया में कुशल श्रमिकों के साथ–साथ अर्ध कुशल व अप्रशिक्षित कामगार भी आसानी से खप जाते हैं।

आज ग्रामीण जनसंख्या के 40 प्रतिशत हिस्से की रोजी–रोटी की व्यवस्था क्लस्टर व्यवस्था द्वारा ही होती है। क्लस्टर रणनीति के बहुत से लाभ हैं जिसके कारण कृषि–प्रधान देश भारत में यह अपनाया जा रहा है। कच्चा माल, साज सामान, नई या इस्तेमाल शुदा मशीनों की आपूर्ति, आपूर्तिकर्ता द्वारा स्वमेव ढंग से हो जाती है। जब क्लस्टर अपनी भूमिका पूरी करता है तब वह विशेषज्ञों, व्यापारियों एवं उनके एजेंटो को भी आकर्षित करता है। इस प्रकार क्लस्टर ग्रामीण परिवेश को औद्योगिक क्षेत्र में परिवर्तित करने का एक माध्यम बन गया है।

यह बहुत दुख की बात है कि भारत जैसा देश जहां करीब 75 प्रतिशत जनसंख्या गांव में रहती है और सरकार की बहुत–सी घोषणाओं के बावजूद पर्याप्त प्रगति नहीं हो पा रही है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए सरकारी सहायता और संरक्षण की आवश्यकता है।

निष्कर्ष यह है कि गांवों में स्थिति क्लस्टर से बनी वस्तुएं देश के आधारभूत ढांचे में तो कोई क्रांतिकारी भूमिका तो नहीं निभा पाई हैं लेकिन भारतीय संस्कृति को जीवित रखने में आशा की एक किरण बनी हुई हैं। ❑

पूर्वी उत्तर प्रदेश में

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग से रोजगार के अवसर

वीरेन्द्र तिवारी

मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता रोटी, कपड़ा और मकान है। मानव की इस मूलभूत आवश्यकता को उपयोगी तथा सहज बनाने के लिए इससे जुड़े, उद्योगों का विकास हुआ। भोजन सम्बन्धी अधिकतर चीजों के लिए मनुष्य मौसम आधारित कृषि पर निर्भर रहा, अतः प्रत्येक खाद्य वस्तु को हर मौसम में बनाए रखने की उसकी इच्छा ने खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को जन्म दिया। इस उद्योग को यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो प्राचीन काल से ही हमें इसका ज्ञान था। अचार, मुरब्बे, गुलकन्द आदि इसके ऐसे उदाहरण हैं जो हमारे पूर्वजों के भी संज्ञान में थे जिसमें हम खाद्य पदार्थों को प्रसंस्करित करके अपने उपयोग में लाते रहे हैं। पिछली शताब्दी में बढ़ती हुई जनसंख्या तथा नित नए वैज्ञानिक आविष्कारों से इस उद्योग को एक नया आयाम मिला और मशीनों के आगमन से इसे एक सुसंगठित क्षेत्र में प्रवेश करने का अवसर मिला। परन्तु इस क्षेत्र को वह महत्ता अपने देश में नहीं मिल पाई जो कि सौ करोड़ की जनसंख्या वाले देश में मिलनी चाहिए थी। यही कारण है कि यह उद्योग अभी बाल्यावस्था में है। भारत सरकार ने अभी 10 वर्ष पूर्व खाद्य और प्रसंस्करण मंत्रालय का गठन किया गया है। इस समय शासन अपने मन्तव्यों से इस दिशा में गम्भीर दिखाई पड़ता है। परन्तु हम इस उद्योग की अपेक्षाओं से बहुत पीछे खड़े हैं।

भारत पूरे विश्व में फलों के उत्पादन में प्रथम स्थान पर तथा सब्जियों के उत्पादन में दूसरे स्थान पर है। फिर भी प्रसंस्करण के अभाव में हम इन उत्पादों का समुचित उपयोग नहीं कर पाते हैं, जिसका परिणाम यह है कि हर वर्ष अरबों रुपये के फल और सब्जियां सड़कर खराब हो जाती हैं। सौ करोड़ की आबादी वाले देश के लिए यह एक अत्यन्त ही चिन्ता का विषय है, कि जहां आबादी के बड़े हिस्से को ये चीजें नहीं मिल पातीं है वहीं ये जीवन उपयोगी पदार्थ सड़कर बेकार हो जाते हैं। देश की 20 प्रतिशत जनसंख्या वाले उत्तर प्रदेश में तो यह बात और भी महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि किसी भी अन्य राज्य की अपेक्षा इस पर जनसंख्या का दबाव सर्वाधिक है। उत्तर प्रदेश के सर्वाधिक घनी आबादी वाले क्षेत्रों की विपदा तो और कष्टकारी है। जनसंख्या घनत्व की अधिकता के कारण यहां जोतें छोटी हो गई हैं, किसी उद्योग धन्धे के अभाव में दिन व दिन मजदूरों का पलायन अन्य क्षेत्रों में हो रहा है जिससे ये क्षेत्र आज भी अन्य क्षेत्रों से काफी पिछड़े हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश, उत्तर प्रदेश का ऐसा क्षेत्र है जहां ये सारी समस्याएं अपने दुरूह रूप में हैं। इस क्षेत्र के ज्यादातार जिलों में एक ओर तो जनसंख्या का भारी दबाव है, दूसरी ओर या तो उद्योग हैं नहीं, यदि कहीं–कहीं हैं तो वे यहां के लोगों की आकांक्षाओं की पूर्ति करने में असमर्थ हैं। यही कारण है कि यह राज्य सर्वाधिक पिछड़े राज्यों में आता है। गंगा, घाघरा, गोमती आदि नदियों के कारण यहां की धरती उपजाऊ है, और यही कारण है कि यहां बड़े उद्योग लग नहीं पाए, क्योंकि इसके लिए उपजाऊ धरती को नष्ट करना पड़ता है, दूसरी ओर छोटी जोतों के कारण किसी भी उद्योगपति के लिए यहां बड़े क्षेत्रफल में एक साथ भूमि प्राप्त करना सरल नहीं है। ऐसे में प्रश्न उठता है कि यहां कौन से उद्योग लगाए जाएं जो यहां के उत्पादों का उपयोग अपने कच्चे माल के रूप में कर सकें, जिनके लिए अधिक भूमि की भी आवश्यकता न हो तथा वे यहां की अर्थव्यवस्था में गुणात्मक सुधार के साथ–साथ यहां की श्रमशक्ति को भी बांध रखने में सफल हों। किसी भी उद्योग से सम्बन्धित कच्चा माल, प्रशिक्षित श्रमिक तथा बाजार की उपलब्धता, मूल रूप से कोई भी उद्योग चार स्तम्भों पर टिका है जिसमें चौथा स्तम्भ इन तीनों के अलावा प्रबंधन का है। इसलिए उद्योग लगाने से पूर्व सभी बिन्दुओं का वरीयता क्रम में आकलन करना आवश्यक

डिब्बाबंद वस्तुओं का लगातार बढ़ता बाजार

है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के अधिकांश जिले कृषि पर ही निर्भर हैं। अतः यदि यहां पर कृषि उत्पादों पर आधारित उद्योगों की सम्भावनाओं पर विचार किया जाए तो ये न केवल यहां की अर्थव्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन लाने में सफल होंगे अपितु यह यहां की पलायनवादी श्रम शक्ति को भी रोक सकेंगे। पूर्वी उत्तर प्रदेश के अधिकांश जिलों में सब्जियों और फलों का पर्याप्त उत्पादन है। जौनपुर, गाजीपुर, मऊ, वाराणसी, सिद्धार्थनगर, देवरिया सब्जियों के उत्पादन में अग्रणी जिले हैं तो वाराणसी, भदोही, इलाहाबाद, बलिया आदि मौसमी फलों में आगे हैं। प्रतापगढ़ आंवले की खान है, तो इलाहाबादी अमरूद विश्व प्रसिद्ध है। अब प्रश्न उठता है कि इन उत्पादों को किस प्रकार प्रसंस्करित करके इनका विपणन किया जाए, जिससे अपेक्षित लक्ष्य की प्राप्ति हो सके।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में जिन खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों की स्थापना की जा सकती है, उसमें सबसे प्रमुख अचार उद्योग है। यह एक ऐसा उत्पाद है जिसकी खपत महलों से लेकर झोंपड़ी तक है। वर्तमान में हुए आर्थिक परिवर्तनों के फलस्वरूप लोगों की प्रवृत्ति भी बने–बनाए अचारों की ओर बढ़ी है। अतः उचित गुणवत्ता बनाए रखकर इसका स्थानीय विपणन किया जा सकता है, क्योंकि मांग और आपूर्ति में लगातार अंतर बना हुआ है। दूसरे बड़ी कम्पनियों का भी हस्तक्षेप इस क्षेत्र में बहुत अधिक नहीं है। स्थानीय विपणन के अलावा बिहार, पंजाब, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, गुजरात, राजस्थान इसके लिए अच्छे बाजार हैं। केवल हमें क्षेत्रवार स्वाद को बदलना होगा। निर्यात के क्षेत्र में भी मध्यपूर्व खाड़ी के देशों और इंग्लैण्ड आदि में इसकी प्रबल सम्भावना है। इसका उत्पादन निजी क्षेत्र के बजाय यदि सरकारी क्षेत्र में किया जाए तो इसमें ज्यादा लोगों की भागीदारी हो सकती है। इसके अलावा बहुआयामी फल एवं सब्जी उत्पादों के उद्योग स्थापित किए जा सकते हैं, जिसमें जैम, जैली, टमाटर, प्यूरी, कैचअप, फलों के गूदों (पल्प) से स्क्वेश आदि तैयार किए जा सकते हैं। ये समस्त उत्पाद एक ही इकाई में उत्पादित करना सम्भव है तथा इनके लिए मशीनें भी बड़ी सीमित संख्या में चाहिए, साथ ही इन पर विद्युत खर्च भी बहुत अधिक नहीं है। सारा का सारा उत्पादन मौसम के अनुसार प्राप्त हो रहे फल और सब्जियों के अनुसार किया जा सकता है, यहां तक कि इन उत्पादों के विपणन का प्रश्न है तो छोटी इकाइयां स्थानीय स्तर पर अथवा आस–पास के क्षेत्रों में इनको बेच सकती हैं। होटल, रेस्टोरेन्ट, होस्टल के अलावा रेलवे तथा अन्य सरकारी संस्थाओं में इनकी आपूर्ति की जा सकती है। इसके अतिरिक्त बड़ी कम्पनियों का अर्धनिर्मित उत्पाद जैसे – टमाटर प्यूरी या आम का पल्प तैयार किया जा सकता है। इन बड़े संगठनों के अन्य उत्पाद भी इनकी देख–रेख में अपने यहां तैयार किए जा सकते हैं। बड़ी इकाइयों में

भारत पूरे विश्व में फलों के उत्पादन में प्रथम स्थान पर तथा सब्जियों के उत्पादन में दूसरे स्थान पर है। फिर भी प्रसंस्करण के अभाव में हम इन उत्पादों का समुचित उपयोग नहीं कर पाते हैं, जिसका परिणाम यह है कि हर वर्ष अरबों रुपये के फल और सब्जियां सड़कर खराब हो जाती हैं।

विदेशी सहयोग के साथ–साथ सारा उत्पाद निर्यात करना भी संभव है। इसके अलावा डिब्बा बन्द खाद्य पदार्थों का भी एक अच्छा बाजार है, इसे अकेले भी बिना विदेशी सहयोग के स्थापित किया जा सकता है या बहुत उत्पादीय इकाई की सहायक इकाई के रूप में भी स्थापित किया जा सकता है। ऐसी ढेर सारी सब्जियां और फल हैं जिनको उपचारित करके डिब्बा बन्द किया जाता है। कुछ नई प्रयोग किये जो सकते है। नई बहुमूल्य सब्जियों जैसे ब्रुकोली, चाइनिज कैवैज, रेड कैवेज, बेबी कार्न आदि उत्पादों का एक बढ़ता हुआ बाजार है, तथा इनकी कीमत अच्छी मिल रही है। इन सभी को डिब्बाबन्द करके लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

इसी श्रृंखला में मशरूम की चर्चा किए बगैर नहीं रहा जा सकता। यह एक ऐसा पौष्टिक उत्पादन है, जिसका बाजार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तो है ही, साथ ही स्थानीय स्तर पर यह एक तेजी से स्वीकृत होता उत्पाद है। इसकी अक्तूबर से मार्च के मध्य ग्रामीण क्षेत्रों में छोटी–छोटी झोंपड़ियों में पैदा किया जा सकता है। सहकारी क्षेत्र में कार्य करने के लिए यह एक आदर्श उत्पाद है। इसका कच्चा माल भूसा है, जिसकी उपलब्धता इस क्षेत्र में बहुतायत से है, इस क्रम में यदि गेहूं के उन खेतों से बचा हुआ हिस्सा इस्तेमाल किया जाए जहां खेतों की कटाई मशीन से होती है, और बलिया के नीचे वाला हिस्सा बेकार जाता है। यह बचा हुआ हिस्सा न सिर्फ सस्ता है, अपितु इससे मशरूम का उत्पादन भी अधिक लिया जा सकता है।

इस तरह खाद्य प्रसंस्करण उद्योग, उद्योग की अपार सम्भावनाओं से भरा हुआ है, यहां न सिर्फ कच्चे माल की बहुतायत अपितु सस्ते श्रम के साथ–साथ उसकी खपत करने के लिए अच्छा बाजार भी है। वाराणसी, पटना के बाजारों को केन्द्रीकृत कर यहां के उत्पादों का वितरण सभी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मंडियों में किया जा सकता है। इसी संदर्भ में गंगा का उपयोग एक वरदान साबित होगा। यदि गंगा नदी में प्रस्तावित इलाहाबाद से हल्दिया तक जलयानों का आवागमन स्थायी रूप से शुरू हो जाए, तो इससे न सिर्फ माल भाड़े में बचत होगी अपितु ऐसे उत्पादों को भी अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों तक पहुंचाना सम्भव हो सकेगा जो अपने सभी श्रेष्ठ गुणों के बावजूद आज तक अछूते हैं। यदि शासन की ओर से गम्भीरतापूर्वक पहल की जाए तो यह उद्योग इस घनी आबादी क्षेत्र का कायाकल्प करने में समर्थ होगा। यह एक ऐसा उद्योग है जो कम से कम पूंजी से ही शुरू हो सकता है तथा जिसे कहीं तक बढ़ाया जा सकता है। दूसरे आज भी इस उद्योग में 90 प्रतिशत भागीदारी छोटे और अत्यन्त छोटे समूहों की है, सहकारी क्षेत्र में इसे व्यवस्थित करना न केवल सुविधाजनक है, अपितु लाभप्रद है। इन परिस्थितियों में सिर्फ आवश्यकता इस बात की है, कि इस क्षेत्र में वे लोग आगे आएं, जो मूल रूप से इस क्षेत्र के निवासी हैं और अन्य स्थानों पर अच्छे उद्योग चला रहे हैं। साथ ही शासन और स्वयंसेवी संगठन इस दिशा में सकारात्मक भूमिका निभाएं तभी अपेक्षित लक्ष्यों की प्राप्ति संभव होगी। ❑

राजस्थान में जनसंख्या विस्तार :

एक राष्ट्र या राज्य के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक विकास, सुख–समृद्धि, स्वास्थ्य, मानसिकता, कानून व्यवस्था की स्थिति के स्तर पर वहां की जनसंख्या के आकार, घनत्व, साक्षरता, लिंगानुपात, कार्यशीलता, क्षेत्रानुसार और वर्गानुसार विभाजन जैसे तत्वों का प्रत्यक्ष तथा परोक्ष प्रभाव पड़ता है क्योंकि विकास के तीन आवश्यक साधनों – भौतिक, वित्तीय और मानवीय में से अंतिम साधन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। स्पष्टतः जनसंख्या के आकार के साथ ही उसकी किस्म भी उपलब्ध संसाधनों के विदोहन, वितरण और उपयोग को प्रभावित करती है। यह तथ्य राजस्थान के संदर्भ में बहुत सही है। जहां मानवीय साधन (जनसंख्या) के निरंतर रूप से बढ़ते जाने के बावजूद गरीबी, पिछड़ापन, निरक्षरता, बेरोजगारी, आर्थिक विषमता, निम्नतर स्वास्थ्य, पर्यावरण, प्रदूषण, जलाभाव, लिंगभेद जैसी समस्याएं भी बढ़ती जा रही हैं। प्रश्न उठता है – ऐसा क्यों? उत्तर स्पष्ट है राजस्थान में जनसंख्या के आकार में पिछले वर्षों में अनावश्यक विस्तार हुआ है परंतु उसकी किस्म में सुधार नहीं हो सका है।

जनसंख्या का आकार

राजस्थान की जनसंख्या 1991 की जनगणना के अनुसार 4.40 करोड़ थी जिसके 2001 में 5.61 करोड़ तक पहुंच जाने का अनुमान है। पिछले एक सौ वर्षों में केवल दो बार जनगणना वृद्धि में कमी दर्ज की गई है जो तालिका से स्पष्ट है।

जनसंख्या का आकार और वृद्धि

वर्ष	जनसंख्या (करोड़ में)	दशक वृद्धि (करोड़ में)
1901	1.03	.....
1911	1.10	.07
1921	1.04	– .06
1931	1.18	.14
1941	1.39	.21
1951	1.59	.20
1961	2.01	.42
1971	2.58	.57
1981	3.43	.85
1991	4.40	.97
2001 (अनुमानित)	5.61	1.21

निदेशक : सुबोध इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट एण्ड कैरियर स्टडीज, रामबाग सर्किल, जयपुर

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि राजस्थान के निर्माण के समय इसकी जनसंख्या लगभग 1.6 करोड़ थी जो कि वर्तमान में बढ़कर तीन गुना हो गई है। चिंतनीय तथ्य तो यह है कि राज्य में जनसंख्या वृद्धि की दर बहुत अधिक रही है। 1951 की तुलना में 1961 में यह वृद्धि दर 26.4 प्रतिशत थी जो 1971–81 में 33 प्रतिशत तक पहुंच गई। कुछ संतोष की बात यह ही है कि 1981–91 के दशक में यह वृद्धि दर 28.4 प्रतिशत अर्थात पिछले दशक की तुलना में 4.6 प्रतिशत कम रही। वर्तमान दशक में यह वृद्धि दर 27.5 प्रतिशत अर्थात पिछले दशक से 0.90 प्रतिशत कम रहने का अनुमान है। राज्य में जनसंख्या वृद्धि दर (28.4 प्रतिशत) देश की कुल वृद्धि दर (23.5 प्रतिशत) से बहुत ज्यादा है।

जन्म दर : 1996 में भारत की 27.4 व्यक्ति प्रति हजार जन्म दर की तुलना में राजस्थान में यह दर कहीं अधिक 32.3 थी। इसके कारणों को जानना बहुत जरूरी है जो निम्नानुसार हैं :

- **शादी की निम्न औसत आयु** : राजस्थान में बाल विवाह की कुप्रथा, निम्न साक्षरता दर, रूढ़िवादी और परम्परावादी सामाजिक परिस्थितियां तथा गरीबी अधिक प्रचलित है। राज्य में विवाह की औसत आयु भी कानूनी रूप से अनिवार्य न्यूनतम आयु (लड़कों के लिए 21 वर्ष तथा लड़कियों के लिए 18 वर्ष) से कम है जो इस तालिका से स्पष्ट है :

विवाह की औसत आयु सीमा

वर्ग	1971	1981
लड़कों के लिए	19.5	20.3
लड़कियों के लिए	15.1	16.1

- **महिलाओं में साक्षरता की निम्न दर** : 1991 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में महिला साक्षरता दर केवल 20.4 प्रतिशत है जबकि ग्रामीण महिलाओं में यह प्रतिशत केवल 11.6 है। इतना ही नहीं बाड़मेर और जैसलमेर जैसे अविकसित जिलों में तो यह प्रतिशत क्रमशः 4.2 और 4.7 ही है। इसके लिए महिलाओं को परिवार नियोजन कार्यक्रम की कम जानकारी, रूढ़ियों और परम्पराओं की निरन्तरता और भाग्यवादी दृष्टिकोण उत्तरदायी हैं।
- **दम्पति सुरक्षा दर** : 31 मार्च 1996 को राज्य में केवल 30.4 प्रतिशत दम्पत्ति परिवार

नागरिक सुविधाओं पर मार

डा. मान चंद जैन 'खण्डेला'

नियोजन के किसी साधन को अपना रहे थे जबकि महाराष्ट्र और केरल जैसे राज्यों में यह प्रतिशत क्रमश 56.2 और 55.6 था।

- **सामाजिक पिछड़ापन** : 1991 की जनगणना के अनुसार राज्य में 17.3 प्रतिशत जनसंख्या अनुसूचित जाति की और 12.4 प्रतिशत जनसंख्या अनुसूचित जनजाति की थी जो कि सामाजिक दृष्टि से पिछड़ी जातियां कही जाती हैं।
- **शादीशुदा महिलाओं का ऊंचा अनुपात** : राज्य में वर्ष 1981 में 20 और 24 वर्ष की आयु वर्ग में विवाहित महिलाओं का प्रतिशत 94.7 था जबकि यह प्रतिशत वर्ष 1991 में 96.6 था। इसी प्रकार 15 से 44 वर्ष के आयु वर्ग में यह प्रतिशत क्रमशः 86.6 और 91.2 था। इस स्थिति के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का अभाव, सामाजिक बंधनों का प्रभुत्व, महिलाओं में आर्थिक स्वावलंबन की कमी जैसे कारण जिम्मेदार हैं।

लिंगानुपात :

राज्य के संबंध में एक चिंतनीय तथ्य यह है कि यहां प्रतिवर्ष पुरुष–स्त्री लिंगानुपात कम होता जा रहा है। 1981 में राज्य में प्रति

1000 पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या 919 थी जो 1991 में 910 रह गई। यह अनुपात विभिन्न जिलों में कम अधिक है। 16 जिलों में अनुपात औसत से अधिक है जबकि धौलपुर जिले में यह अनुपात न्यूनतम केवल मात्र 795 था। स्पष्टतः यह लिंगानुपात स्त्री जनसंख्या की आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, राजनैतिक तथा स्वास्थ्य के क्षेत्र में दयनीय स्थिति को प्रतिबिंबित करता है। इस स्थिति के लिए महिलाओं की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता, कठोर सामाजिक बंधन, साक्षरता की न्यूनता, राजनैतिक जागरूकता का अभाव, संगठनों की अनुपस्थिति जैसे कारण उत्तरदायी हैं।

जनसुख्या का घनत्व :

1991 में राजस्थान में जनसंख्या का घनत्व भारत में प्रति वर्ग किलोमीटर 214 की तुलना में 129 था जबकि 1981 में राष्ट्रीय स्तर पर यह प्रतिशत 216 और राज्य स्तर पर 100 था। यह सूचकांक तेजी से बढ़ती जा रही जनसंख्या और उस अनुपात में जीवन–निर्वाह के साधनों में आती कमी का सूचक है। राज्य में सर्वाधिक घनत्व वाला जिला जयपुर (336) और न्यूनतम घनत्व वाला जिला जैसलमेर (9) है। इन सूचकांकों से राज्य में अनावश्यक शहरीकरण की समस्या को समझा जा सकता है।

साक्षरता दर : पिछले दशकों में साक्षरता की दर निम्न प्रकार रही है :

(कुल जनसंख्या का प्रतिशत)

वर्ष	सभी व्यक्तियों के लिए	प्रतिशत पुरुष	स्त्रियां
1951	8.9	14.4	3.0
1961	15.2	23.7	5.8
1971	19.1	28.7	8.5
1981	30.1	44.8	14.0
1991	38.6	55.0	20.4

यह सही है कि 1951 और 1991 के बीच की अवधि में साक्षरता की दर में सुधार हुआ है लेकिन इसे संतोषजनक किसी भी आधार पर नहीं कहा जा सकता है। तथ्यात्मक रूप से तो महिला साक्षरता दर वर्ष 1951 में मात्र 3 प्रतिशत से बढ़कर 1991 में 20.4 प्रतिशत हो गई है। दुखद यथार्थ यह है कि महिलाओं में साक्षरता की दर राज्य में पिछड़ेपन के पर्यायवाची माने जाने वाले राज्य बिहार से भी कम है। ग्रामीण महिलाओं में यह प्रतिशत केवल मात्र 11.6 है। राज्य में बाड़मेर जैसा जिला भी है जहां महिला साक्षरता की दर केवल 4.2 प्रतिशत ही है।

इतनी न्यून साक्षरता दर के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक स्कूलों की कमी, बालिकाओं को स्कूलों में नही भेजने की मजबूरी और प्रवृत्ति, प्राथमिक शिक्षा योजनाओं के क्रियान्वयन में दोष, पिछड़ेपन से आच्छादित सामाजिक परिवेश, स्वयंसेवी संस्थाओं की कम सहभागिता और गरीबी जैसे कारण उत्तरदायी हैं।

श्रम शक्ति का व्यावसायिक विभाजन :

1991 में कुल जनसंख्या में श्रम शक्ति का भाग 39 प्रतिशत था जिसमें मुख्य श्रमिक (किसी आर्थिक क्रिया में एक वर्ष में न्यूनतम 6 महीने भाग लेने वाले) और सीमांत श्रमिक दोनों शामिल हैं।

श्रमिकों का औद्योगिक श्रेणी विभाजन (केवल मुख्य श्रमिक)

क्र. सं.	औद्योगिक श्रेणी	1981	1991
1.	कृषक	61.6	58.8
2.	खेतिहर मजदूर	7.3	10.0
3.	पारिवारिक उद्योगों में कार्यरत	3.3	2.0
4.	पशुपालन, वन, मछलीपालन, खनन, व्यापार, परिवहन आदि अन्य कार्य करने वाले	27.8	29.2
	कुल	100.0	100.0

1981 की तुलना में 1991 में कुल श्रमिक शक्ति में कृषकों का भाग 2.8 प्रतिशत कम हुआ है तथा खेतिहर मजदूरों का अनुपात 2.7 प्रतिशत बढ़ गया है। यह प्रवृत्ति सकारात्मक तो है लेकिन संतुष्टि के लायक नहीं है क्योंकि राज्य में कृषि क्षेत्र में अभी भी करीब 20 प्रतिशत श्रम शक्ति अनावश्यक यानी अनुत्पादक रूप में लगी हुई है।

शहरी जनसंख्या का अनुपात : राज्य की कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या का अपुनात 1981 में 21.1 प्रतिशत था जो 1991 में बढ़कर 22.9 प्रतिशत हो गया। सामान्यतया शहरी जनसंख्या के बढ़ते अनुपात को आर्थिक विकास का सूचक माना जाता है। इस दृष्टि से तो जनसंख्या वाला जिला जालौर 92.72 प्रतिशत है और न्यूनतम अनुपात वाला जिला कोटा 49.47 प्रतिशत है।

जनसंख्या वृद्धि का जीवन स्तर पर प्रभाव

राजस्थान की जनसंख्या के बढ़े हुए आकार के कारण राज्य में गरीबी, बेरोजगारी, खाद्यान्नों की कम उपलब्धता, पर्यावरण प्रदूषण, अस्त–व्यस्त यातायात, मकानों की कमी जैसी समस्याएं बढ़ती जा रही हैं जिनका संक्षेप में वर्णन निम्न प्रकार है :

1. **बेरोजगारी** : राज्य में लगभग 3.5 लाख नए व्यक्ति प्रति वर्ष रोजगार बाजार में प्रवेश करते हैं जिनकी संख्या 2001 में 4.5 लाख होने का अनुमान है जबकि रोजगार की क्षमता 30 हजार प्रति वर्ष से अधिक नहीं बढ़ सकती है। इस असंतुलन के लिए श्रम की कम होती जा रही महत्ता, शिक्षित व्यक्तियों में नौकरी के प्रति बढ़ रही ललक, सरकारी क्षेत्र में रोजगार के अवसरों की शून्यता, महिलाओं में कैरियर बनाने की बढ़ती जा रही आकांक्षा और पढ़े–लिखों में कृषि के प्रति कम होता जा रहा आकर्षण उत्तरदायी हैं।
2. **खाद्यान्नों की कम उपलब्धता** : जनसंख्या वृद्धि और उपलब्ध भूमि की स्थिरता के कारण प्रति व्यक्ति उपलब्ध कृषि भूमि ही कम नहीं बल्कि खेत भी छोटे होते जा रहे हैं। ऐसे में गहन खेती करना अधिक मुश्किल होता जा रहा है। स्वतंत्रता–प्राप्ति के समय राज्य में प्रति व्यक्ति उपलब्ध भूमि 11.3 हैक्टेयर थी जो घटकर अब 4.11 हैक्टेयर ही रह गई है। पिछले चार दशकों में जनसंख्या वृद्धि 2.5 से 3.0 प्रतिशत वार्षिक की दर से बढ़ी है। इसी कारण से प्रति व्यक्ति प्रति

खाद्यान्न की उपलब्धता जो 1961 में 241 किलो थी 1991 में केवल 192 किलो रह गई है।

3. **पेयजल संकट** : राजस्थान मूलतः शुष्क प्रदेश है जहां भूमिगत जल और वर्षा दोनों की ही कमी है। जनसंख्या वृद्धि के कारण यह संकट और अधिक गहराता जा रहा है। वर्ष 1951 में राज्य में उपलब्ध पानी का उपयोग 3 करोड़ मानव और जानवर करते थे। उनकी संख्या वर्तमान में बढ़कर करीब 9 करोड़ हो गई है। इस तरह से राज्य में प्रति व्यक्ति और पशु उपलब्ध पानी 1951 की तुलना में करीब एक तिहाई रह गया है। इस संकट का मुकाबला केवल भूमिगत जल के सहारे ही नहीं किया जा सकता है। इसके लिए तो वर्षा के पानी का वैज्ञानिक संग्रहण, उपयोग में मितव्ययता, सिंचाई के साधनों में आधुनिक उपकरणों का उपयोग, निजी ट्यूबवैलों के नियमितिकरण और पानी के विलासितापूर्ण उपयोग पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने जैसे उपाय अपनाने की आवश्यकता है।

4. **बढ़ती गरीबी** : जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में आर्थिक विकास नहीं होता है तो गरीबों की संख्या वृद्धि अवश्यम्भावी है। इसी कारण से अनेक प्रयासों के बावजूद भी राज्य में गरीबों की संख्या में महत्वपूर्ण कमी नहीं की जा सकी है। एक अनुमान के अनुसार 1980–90 में ग्रामीण निर्धनता का प्रतिशत 26.1 था जो, 1993–94 में बढ़कर 26.5 प्रतिशत हो गया। योजना आयोग के एक वैज्ञानिक अध्ययन दल द्वारा प्रकाशित अनुमानों के अनुसार मार्च 1997 में शहरी क्षेत्रों में निर्धनता का अनुपात 31.6 प्रतिशत था।

5. **आवासीय समस्या** : 1981 में राज्य में कुल 10.5 लाख मकानों की कमी थी जिसके वर्तमान में बढ़कर दोगुना हो जाने का अनुमान है। इस कमी को दूर करने के लिए न्यूनतम 5,250 करोड़ रुपये के विनियोग की आवश्यकता है जो राज्य की वित्तीय स्थिति को देखते हुए कठिन लगता है।

6. **शिक्षण संस्थाओं की कमी** : राज्य सरकार की नीति है कि प्राथमिक शिक्षा सभी को उपलब्ध हो। लेकिन तेज गति से बढ़ती जा रही जनसंख्या इस लक्ष्य के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। वर्तमान में राज्य में करीब 25,000 प्राथमिक विद्यालयों और 3,500 उच्च प्राथमिक विद्यालयों की कमी है। ऐसे में बढ़ती जनसंख्या को रोकने के अलावा शिक्षा के सार्वजनीकरण का कोई दूसरा उपाय नहीं है।

निष्कर्ष यही है कि आर्थिक विकास के लाभों को सभी व्यक्तियों तक पहुचाने के लिए जनसंख्या वृद्धि दर में कमी करना अनिवार्य है। इसके लिए केवल सरकारी स्तर पर चलाए जा रहे कार्यक्रम पर्याप्त नहीं हो सकते। इसके लिए तो सामाजिक स्तर पर अभियान चलाने की आवश्यकता है। तब ही राजस्थान के अधिकांश निरक्षर, रूढ़िवादी और उपेक्षित जन अपने भविष्य के संबंध में कुछ सकारात्मक सोच सकते हैं और उस पर अमल कर सकते हैं। इसके लिए सरकार और समाज दोनों में समन्वय, समझ और सहयोग होना आवश्यक है। ❑

(पृष्ठ 2 का शेष) **पाठकों के विचार**

को चाहिए कि बोझा ढोने वाले पशुओं और बैलगाड़ियों में अपेक्षित सुधार कर हर किसान को नए नमूने की बैलगाड़ी सस्ती कीमत पर उपलब्ध कराए तभी देश की अर्थव्यवस्था का संतुलित विकास संभव हो सकेगा।

सचिन कुमार, पोस्ट – बासोडीट,
जिला – कोडरमा–805132

ग्रामीण जनसंख्या को मुख्यधारा से जोड़ा जाए

समग्र ग्रामीण विकास को समर्पित *कुरुक्षेत्र* पत्रिका का अगस्त 2000 का अंक पढ़ने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है जो ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी, शिक्षा तथा अन्य बुनियादी पहलुओं पर प्रकाश डालती है। बेरोजगारी और निर्धनता आर्थिक पिछड़ेपन के दो आधार स्तम्भ हैं। भारत एक विशाल आबादी वाला गांवों का देश है। तीव्र जनसंख्या वृद्धि ने बेरोजगारी को नया आयाम दिया है अर्थात् व्यक्ति काम करना चाहता है परन्तु उसे काम नहीं मिलता। बेरोजगारी के प्रसार ने निर्धनता की समस्या उत्पन्न की है और इस प्रकार बेरोजगारी – निर्धनता – आर्थिक पिछड़ेपन का दुश्चक्र निरन्तर चलता रहता है। यह दुश्चक्र एक गंभीर समस्या तो है ही, इससे भी बड़ा अभिशाप यह है कि इसमें स्वतः विकसित होने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

वर्ष 2000–2001 का बजट ग्रामीण विकास को समर्पित किया गया है। इससे ग्रामीण निर्धनता और बेरोजगारी से निपटने में सरकार की प्रतिबद्धता नजर आती है। ग्रामीण क्षेत्रों में सरकार द्वारा रोजगार सृजन के विभिन्न कार्यक्रम आरम्भ किए गए हैं जैसे जवाहर ग्राम समृद्धि योजना, स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, सुनिश्चित रोजगार योजना आदि। इन कार्यक्रमों और योजनाओं में से कुछ का नाम परिवर्तन किया गया है और कुछ का एक योजना में विलय किया गया है। यदि यह नाम परिवर्तन और विलय ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन के कुछ नए आयाम स्थापित कर सके तथा ग्रामीण जनसंख्या को आत्मनिर्भर बना सके तो यह एक प्रशंसनीय और स्वागत योग्य कदम है, अन्यथा महज परिवर्तन के लिए परिवर्तन करना निरर्थक होगा। सरकार की प्राथमिकता केवल रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना ही नहीं होनी चाहिए बल्कि उसे यह भी देखना चाहिए कि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्येक बेरोजगार व्यक्ति उन अवसरों का लाभ भी उठा रहा है अथवा नहीं। संक्षेप में ग्राम स्वराज का सपना साकार करने के लिए सरकार को अपने वार्षिक बजट तथा अन्य आर्थिक नीतियों में जमीन से जुड़े हुए आम आदमी की बुनियादी जरूरतों को ध्यान में रखना होगा, क्योंकि आत्मनिर्भरता की शुरुआत तभी होगी, जब ग्रामीण जनसंख्या को विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जाएगा। इस सन्दर्भ में डा. पारसनाथ सिंह तथा डा. कृष्ण कुमार सिंह का लेखन प्रयास सराहनीय है।

भारत भूषण शर्मा, पुराना शहर,
किशनगढ़, अजमेर (राजस्थान)

मूंगफली : आहार भी औषधि भी

डा. विजय कुमार उपाध्याय*

मूंगफली चा चीना बादाम से संसार के अधिकांश लोग परिचित हैं। अंग्रेजी में इसे ग्राउंड नट कहा जाता है। ऐतिहासिक अभिलेखों के अध्ययन से पता चलता है कि मूंगफली या चीना बादाम का मूल स्रोत ब्राजिल था। यहां से यह दक्षिण अमरीका के विभिन्न देशों की यात्रा करती हुए एशियाई देशों में पहुंची। अनुमान है कि ईसा बाद सोलहवीं शताब्दी में मूंगफली का आगमन चीन से भारत में हुआ। चीन से आने के कारण ही इसका नाम चीना बादाम रखा गया।

मूंगफली की कई जातियां पाई जाती हैं जिनमें सबसे प्रमुख है ऐराकिस हाइपोजेइया। प्रायः इसी जाति की खेती आजकल भारत में की जाती है। इस जाति की तीन उपजातियां पाई जाती हैं जिनके नाम हैं – स्पैनिश, वैलसिया तथा वर्जीनिया।

मूंगफली के दानों के रासायनिक विश्लेषण से पता चला है कि इसमें वसा काफी मात्रा में मौजूद रहती है। इसके अलावा इसमें प्रोटीन भी काफी मात्रा में पाया जाता है। मूंगफली में विटामीन 'बी' बहुत अधिक पाया जाता है। इनके अलावा कुछ अन्य विटामिन तथा खनिज भी पाए जाते हैं।

मूंगफली को अनेक प्रकार से खाने के उपयोग में लाया जा सकता है। सामान्य तौर पर इसके दानों को भून कर खाया जाता है। चीनी, मांस तथा अनाजों की तुलना में इसमें कैलोरी मान अधिक है। मूंगफली को सामान्य तौर पर गरीबों का मेवा कहा जाता है। इसके दानों को नमक मिले पानी में उबाल कर भी खाया जा सकता है। यह काफी स्वादिष्ट होता है। भुने गए दानों को व्यंजनों में मिलाकर भी खाया जाता है। मूंगफली के भुने दानों को तले गए चिउड़े के साथ मिलाकर चाव से खाया जाता है। इसके दानों को पीस कर यदि उसमें नमक तथा जीरा मिला दिया जाय तो एक स्वादिष्ट चटनी तैयार हो जाती है।

पश्चिमी देशों में मूंगफली के पीसे हुए दानों के पेस्ट से एक प्रकार का खाद्य पदार्थ बनाया जाता है जिसे 'पी नट बटर' कहा जाता है। यह काफी स्वादिष्ट और पौष्टिक होता है। मूंगफली को पीस कर तथा उसमें चीनी की चाशनी मिलाकर अनेक प्रकार की मिठाइयां बनायी जाती हैं।

आजकल मूंगफली के दानों से एक प्रकार का दूध भी बनाया जाता है। यह दूध गाय तथा भैंस के दूध के समान ही पौष्टिक होता है। इस दूध से दही, पनीर तथा खोआ उसी प्रकार बनाया जाता है जिस प्रकार गाय या भैंस के दूध से। इस दूध को बनाने हेतु सबसे पहले मूंगफली के दानों पर से पतले लाल छिलके को हटा दिया जाता है। इस प्रकार उजले रंग के जो दाने प्राप्त होते हैं उन्हें अच्छी तरह पीस कर पेस्ट बना लिया जाता है। इस पेस्ट को इससे छः गुने जल में डालकर अच्छी तरह घोल लिया जाता है। फिर इसे कपड़े से अच्छी तरह छान लिया जाता है। तदुपरान्त इसे चूने से उपचारित कर इसमें जलवाष्प प्रवाहित की जाती है। इस प्रकार से मूंगफली का दूध तैयार हो जाता है। इस दूध में प्रोटीन, वसा तथा विटामीन 'ए', 'बी', 'सी' और 'डी' पर्याप्त परिमाण में पाए जाते हैं।

मूंगफली में वसा की मात्रा काफी अधिक होने के कारण इसका उपयोग तेल निकालने के लिए व्यापक स्तर पर किया जाता है। इस तेल का उपयोग सरसों तेल के स्थान पर खाद्य तेल के रूप में किया जाता है। यह तेल स्वादिष्ट, सुपाच्य और स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। गांधीजी ने अपने द्वारा लिखित 'स्वास्थ्य की कुंजी' में देशी घी के स्थान पर मूंगफली के तेल के उपयोग की सलाह दी है। मूंगफली के तेल से ही वनस्पति घी का निर्माण किया जाता है। इसके लिए इसे हाइड्रोजन से उपचारित करने की आवश्यकता पड़ती है। खाने के अलावा मूंगफली के तेल का उपयोग साबुन, ग्लिसिरिन, शेविंग क्रीम, तथा कोल्डक्रीम इत्यादि के निर्माण में भी किया जाता है। आजकल स्नेहक (लुब्रिकैंट) के रूप में भी इसका उपयोग व्यापक स्तर पर किया जाता है। पहले वस्त्र उद्योग में प्रायः जैतून के तेल का उपयोग किया जाता था परन्तु आजकल उसका स्थान मूंगफली के तेल ने ले लिया है।

मूंगफली अनेक औषधीय गुणों से भरपूर है। इसमें कार्बोहाइड्रेट की मात्रा कम रहने के कारण मधुमेह के रोगियों के लिए यह एक पथ्य माना जाता है। प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्री कुलरंजन मुखर्जी ने कोष्टबद्धता तथा मधुमेह के रोगियों के लिए मूंगफली का सेवन काफी लाफदायक बताया है। मूंगफली के तेल का उपयोग अनेक प्रकार की दवाओं तथा मरहम के निर्माण में व्यापक स्तर पर किया जाता है। जोड़ो के दर्द में मूंगफली के तेल की मालिश काफी उपयोगी पाई गयी है। कीटनाशकों के निर्माण में भी मूंगफली के तेल का उपयोग किया जाता है। मूंगफली से ही आरडीन नामक एक दवा बनाई जाती है जिसका उपयोग दुधारु मवेशियों को खिलाने में किया जाता है जिसके फलस्वरूप दुग्ध उत्पादन में वृद्धि होती है। ❑

* प्राध्यापक – भूगर्भ, इंजिनियरी कालेज, भागलपुर–813210

(आवरण पृष्ठ 2 का शेष)
सलाह–मशविरा किया। सब मिल कर इस नतीजे पर पहुंचे कि शराब उनकी बड़ी दुश्मन है। शराब के रहते गांव का कीमती पैसा बरबाद हो रहा था और लोग आलसी तथा कामचोर हो रहे थे। घर बरबाद हो रहे थे सो अलग।

शराब गांव की तरक्की में बाधा सिद्ध हो रही थी अतः उन्होंने शराब बनाना, बेचना और पीने पर पाबन्दी लगाने का निर्णय लिया। बैठक बुलाकर इस निर्णय के बारे में गांव के लोगों को बता दिया गया और शराब बनाने और बेचने वालों से विनती की गई कि वे यह काम बन्द कर दें। इस मुनादी के बाद लगभग आधे लोगों ने यह काम बन्द कर दिया। इसके बाद फिर बैठक बुलाई गई और बाकी लोगों को चेतावनी दी गई कि यदि वे शराब का धंधा बन्द नहीं करेंगे तो उनके साथ सख्ती से पेश आया जाएगा। इस धमकी के बाद कुछ और लोगों ने धंधा बन्द कर दिया मगर पांच–सात लोग फिर भी उसी काम में लगे रहे।

जब गांव वालों ने देखा कि ऐसे लोगों के साथ सख्ती जरूरी है तब सभी ने तय किया कि इन्हें सबक सिखाना होगा। उन्होंने शराब का धंधा कर रहे लोगों के घर जाकर उनके शराब बनाने के बर्तन फोड़े तथा बहस करने वालों को बीच गली में प्रताड़ित तथा अपमानित किया जिसका किसी ने विरोध नहीं किया। इसके बाद शराब बनाने और बेचने का काम बन्द हो गया। इस कार्यवाही के बाद गांव में बीड़ी–सिगरेट तथा गुटखा बेचना भी बन्द करने का निर्णय लिया गया। उत्साहित गांव वालों ने इन नशीले पदार्थों की होली भी जलाई।

इस बीच पानी रोकने के उपाय जारी रहे। जब काम चल निकला तब सरकार से भी मदद ली गई। गांव वालों ने अन्ना के मार्गदर्शन में खुद ही गांव की जरूरत के मुताबिक योजना बना ली और उस पर अमल करने लगे। पानी रोकने के उपाय सफल रहे और पहली बरसात में ही काफी पानी उन्होंने रोका। पानी के साथ बहने वाली मिट्टी भी रुकने लगी और अधिक पानी को गांव में ही रोकने के लिए उन्होंने वृक्षारोपण का काम हाथ में लिया।

गांव की जमीन पथरीली थी अतः झाड़ लगाने में कठिनाई आने लगी। परन्तु जब लोग संकल्प कर लेते हैं तब कोई भी काम असंभव नहीं रह जाता। उन्होंने रास्ता निकाल लिया और पत्थरों को तोड़कर छोटे–छोटे गड्ढे बनाने लगे। इन गड्ढों में मिट्टी डालकर उन्होंने पेड़ लगाए और इस प्रकार पेड़ लगाने का काम शुरू हुआ। पेड़ से होने वाले लाभों से वे अवगत हो चुके थे।

उन्होंने यह भी जान लिया था कि खेती के लिए पशु बहुत अच्छे होने चाहिए। पशुओं के उत्तम स्वास्थ्य के लिए अच्छा चारा मिलना चाहिए। अतः उन्होंने खाली जगहों में चारा उत्पादन का काम शुरू किया।

अब क्या था – सभी तरह से पुख्ता इंतजाम कर देने के फलस्वरूप गांव में इतना पानी रुकने लगा कि कुओं का जल स्तर बढ़ गया। चारा विकास तथा वृक्षारोपण के कारण पानी मैदानों में भी रुकने लगा जिसके कारण अधिक पानी जमीन के नीचे पहुंचने लगा। जमीन के नीचे पानी का स्तर बढ़ जाने से पीने का पर्याप्त पानी उन्हें मिलने लगा। अब उनके पास पानी का स्टाक इतना अधिक रहता है कि वे मांगने के बजाय दूसरे जरूरतमंद गांवों को पानी देने लगे हैं।

पानी और उपजाऊ मिट्टी को रोके जाने तथा मेढ़बन्दी के फलस्वरूप खेतों में फसल अच्छी होने लगी है। वहां की जमीन प्याज की फसल के लिए उपयुक्त है। अतः वे प्याज उगाने लगे हैं और कल का, उधार पर जीने वाला, रोजी–रोटी के लिए भटकने वाला, दो रोटी के लिए शराब बनाने जैसा निकृष्ट, घृणित काम का अवलम्ब लेने वाला गांव आज चालीस लाख रुपयों का प्याज बाहर भेजता है। जिनके पास जमीन नहीं है उन्हें कुछ अन्य धंधा करने के लिए प्रेरित किया गया। अतः ऐसे लोग अकेले या समूह बनाकर छोटे–छोटे धंधे करने लगे।

लोगों की आमदनी अब इतनी अच्छी हो गई है कि वहां हर घर में टेलीविजन सेट तथा अन्य सुविधाएं भी उपलब्ध हैं।

विकास कार्यों के साथ लोगों की विचार धारा भी बहुत विकसित हो गई है। आपस में भाईचारा इतना अधिक बढ़ गया है कि वहां जाति–प्रथा लगभग टूट–सी गई है। अच्छा ही है क्योंकि जातियां भी तो लोगों को एक–दूसरे से दूर रखती हैं। मैंने वहां किसी से पूछा कि इस गांव में कितनी जातियां हैं? जानते हैं उसने क्या जवाब दिया? उसने कहा कि यहां केवल एक ही जाति के लोग रहते हैं, और वह जाति है – 'मनुष्य जाति'। बताया गया कि यहां शादियां सामूहिक रूप से एक ही मंडप के नीचे सम्पन्न की जाती हैं और विवाह भोज भी सामूहिक ही होता है।

यहां बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया है। गांव वालों ने अपने श्रम से शाला भवन तथा छात्रावास का निर्माण कर डाला है। इस शाला की विशेषता यह है कि यहां उन छात्रों को दाखिला दिया जाता है जिन्हें कहीं और प्रवेश नहीं मिलता अर्थात फेल हुए बच्चों को यहां सहर्ष दाखिल किया जाता है। बाहर के बच्चों के लिए छात्रावास की व्यवस्था है।

गांव वालों ने सौर ऊर्जा की मदद से बिजली की व्यवस्था कर ली है। इनका उत्साह और उद्यम देख सरकार और बाहर की संस्थाएं भी इनकी मदद को आगे आने लगी हैं। यहां एक प्रशिक्षण केन्द्र भी स्थापित किया गया है जिसमें ग्राम–विकास का प्रशिक्षण दिया जाता है।

यह गांव अब एक उदाहरण बन गया है क्योंकि अत्यंत कठिन परिस्थितियों से उबर कर अब यह एक उन्नत और आदर्श गांव बन गया है। इस गांव को देखने के लिए देश–विदेश के लोग आते रहते हैं।

अन्ना हजारे की सफलता से प्रेरित होकर अन्य प्रदेश के लोग भी उन्हें मार्गदर्शन देने के लिए बुलाने लगे हैं। वे न केवल देश में वरन विदेश में भी सम्मान पाने लगे हैं। ❑

आर एन. / 708 / 57
डाक–तार पंजीकरण संख्या :डी (डी एल) 12057 / 2000
आई.एस.एन.एन. 0971–8451
पूर्व भुगतान के बिना के अधीन डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)–55

R.N./708/57
P&T Regd. No. D (DL) 12057/2000
ISSN 0971-8451
Licenced under U (DN)-55
to Post without pre-payment of DPSO, Delhi-54

श्रीमती सुरिन्द्र कौर, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली –110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित।
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू –30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया–II, नई दिल्ली–20 संपादक: बलदेव सिंह मदान